सदस्य प्रकाशक मण्डल

श्री विजय गोयल एडवोकेट
1 सदर बाजार, श्रीगंगानगर
मो:9414087911

श्री साधुराम बंसल ठेकेदार
मीरा मार्ग, जवाहर नगर
श्रीगंगानगर मो.9352652135

श्री शिवभगवान खेतान
7ए28, जवाहर नगर, श्रीगंगानगर
मो. 9352700328

श्री नानक जैन
494 विनोबा बस्ती, श्रीगंगानगर
मो. 9413930651

डॉ. ओ.पी. गोयल
194 जी ब्लॉक, श्रीगंगानगर
मो.: 9414502609

श्री जगदीशराय अग्रवाल
8 डी ब्लॉक, श्रीगंगानगर
फोन:2444442

श्री मोहनलाल लीला
लीला चौक, पुरानी आबादी
श्रीगंगानगर
फोन:0154-2451566

श्री अनिल तांटिया
तांटिया ज्वैलर्स
23 बी सदर बाजार, श्रीगंगानगर
मो: 9414093054

श्री मदनलाल सिंगल
मदन ऑटोमोबाइल्स
75 कोतवाली रोड, श्रीगंगानगर
मो: 9414511000

डॉ. सुरेन्द्र गुप्ता
गुप्ता क्लिनिक
ऐलनाबाद (हरियाणा)
मो. 09416407359

श्री श्याम खारीवाल
महावीर स्टील ट्रेडर्स
13ए लोहा मण्डी, श्रीगंगानगर
मो: 9414088552

इंजि. सुशील बंसल
282, विनोबा बस्ती,
श्रीगंगानगर
फोन: 0154-2477282

अग्र गौरव

सम्पादक

हरपतराय टांटिया

प्रकाशक

अग्रोहा विकास ट्रस्ट

इकाई : श्रीगंगानगर (राजस्थान)

प्रथम संस्करण	जनवरी 2007
प्रकाशक	अग्रोहा विकास ट्रस्ट, इकाई : श्रीगंगानगर अग्रसेन भवन, मॉडल कॉलोनी श्रीगंगानगर-335001 फोन 0154-2461815 मो. 94144-31311
मुद्रक	सिटी कम्प्यूटर, 101 कोठारी मार्केट श्रीगंगानगर (राज.) मो: 94140-88095
मूल्य	20 रूपये

कहनी है एक बात

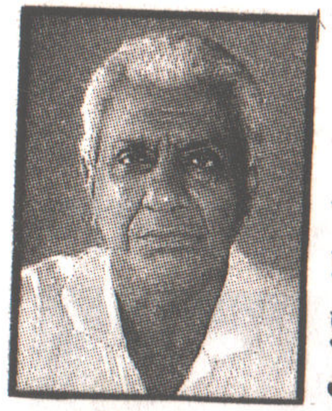

अग्रसमाज के गौरवपूर्ण इतिहास पर स्वर्णिम अक्षरों में लिखी 'अग्र गौरव' नामक यह पुस्तक भविष्य में समाज के लिए एक वरदान सिद्ध होगी। अग्रोहा विकास ट्रस्ट श्रीगंगानगर की इकाई द्वारा भारत के गौरव के उपरान्त प्रकाशित की जाने वाली एक कड़ी के रूप में यह दूसरी पुस्तक है जो आगामी प्रकाशित होने वाली पुस्तकों का आधार बनेगी। अग्र गौरव पुस्तक में अग्रसमाज के लेखकों, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में अग्रगण्य महानुभावों, राजनीतिक क्षेत्र में विशिष्ट स्थान बनाने वाले अग्रजनों, औद्योगिक एवं व्यापारिक क्षेत्र में भारत का गौरव एवं सम्पदा में वृद्धि करने वाले कर्मठ एवं दृढ़ संकल्पी अग्र पुरूषों के साथ-साथ कुछ न्यायिक क्षेत्र एवं समाज सेवा में अग्रणी कार्यकर्त्ताओं की जीवन गाथाओं को संजोया गया हैं ताकि अग्रसमाज के युवाओं को अपना गौरव पूर्ण इतिहास जानने का अवसर प्राप्त हो और अपने पूर्वज महापुरूषों के जीवन चरित्र से उनमें राष्ट्र एवं समाज की सेवा तथा सामाजिक जीवन में उन्नति करने की भावना के साथ-साथ त्यागमय व सर्वजन हिताय कार्यों से प्रेरणा प्राप्त कर अपने जीवन में अपना कर आगे बढ़ने की भावना का गुब्बार मन में हिलोरे लेने लगेगा। निसंदेह पुस्तक प्रकाशन का यह उद्देश्य बड़ा ही पावन एवं सार्थक हैं। ऐसे प्रयासों से ही सामाजिक परम्पराओं, आस्थाओं, उपलब्धियों, आदर्शों, सामाजिक रीतियों को मात्र कायम ही नहीं रखा जा सकेगा बल्कि उन्हें समयानुसार अनुकूल परिस्थितियों में ढालते हुए गतिमान बनाये रखने में भी हम सफल होगें। वैसे तो अग्रवाल समाज का इतिहास दानदाता, समाजसेवी, अहिंसावादी, सामाजिक कल्याणकारी योजनाओं में अग्रणी अग्रजनों से भरा पड़ा हैं। पर यहां कुछ चिन्हित एवं विशिष्ट महानुभावों का वर्णन किया गया है। इस कार्य के लिए अग्रसमाज के सिरमौर, कर्मठ, परिश्रमी एवं संजीदा समाजसेवी श्री हरपतराय टांटिया जी साधुवाद के पात्र हैं। जो निस्वार्थ भावना से लगभग आधी शताब्दी से समाज सेवा में सलंग्न हैं। स्थानीय इकाई के अध्यक्ष इंजी. आर.एन. गोयल सचिव श्री सुरेश गर्ग भी धन्यवाद के पात्र है जिनके सहयोग से इस कार्य को पूर्णतया अंजाम दिया जा सका। अग्रोहा विकास ट्रस्ट, श्रीगंगानगर की इकाई के सदस्य के रूप में इकाई के उज्ज्वल भविष्य की कामना के साथ एक बार पुनः संकलन कर्त्ता श्री हरपतराय टांटिया की दीर्घायु के लिए प्रभु से प्रार्थना करता हुआ अपनी ओर से सभी को शुभकामनाओं सहित-

प्रो. लखीराम सिंगल

प्राचार्य, संत श्री प्राणनाथ महाविद्यालय, पदमपुर-
6 डी ब्लॉक, श्रीगंगानगर

अनुक्रमणिका

1. गीतामूर्ति श्री जयदयाल जी गोयन्दका	3
2. अंतिम विक्रमादित्य- हेमचन्द्र	11
3. सर सादीलाल अग्रवाल	16
4. अग्र गौरव- ओमप्रकाश जिन्दल	19
5. डॉ. रघुवीर	24
6. श्री नौरंगराय खेतान	29
7. काका हाथरसी	35
8. पद्मभूषण श्री सीताराम सेकसरिया	41
9. क्रांतिकारी राष्ट्रभक्त : श्री राधामोहन गोकुल जी	45
10. श्री मोतीलाल केजड़ीवाल	49
11. बाबू बालमुकन्द गुप्त	54
12. ज्ञानमूर्ति : डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल	59
13. श्रीमती पार्वती देवी डीडवानिया	65
14. बाबू बसन्तलाल जी मुरारका	69
15. सेठ रामकृष्ण जी डालमिया	72
16. स्व. सेठ रामनारायण जी जे.पी. मुम्बई	79
17. सूर्यमल जी झुंझनूवाला	86
18. ललित किशोरी एवं ललित माधुरी	91

गीता प्रेस गोरखपुर के संस्थापक

गीतामूर्ति श्री जयदयाल जी गोयन्दका

विगत वैशाख कृष्ण 2,17 अप्रेल 1965 शनिवार को अपराह्न में उत्तराखण्ड में अपने प्रिय धर्मक्षेत्र-कर्मक्षेत्र ऋषिकेश स्वर्गाश्रम के गीता भवन में गीतामूर्ति श्रीमन्त सेठ श्री जयदयाल जी गोयन्दका ने शरीर त्यागकर परम प्रयाण किया- लगभग अस्सी वर्ष का एक आदर्श कर्मयोगी का जीवन बिताकर। श्री गोयन्दका जी के निधन से भारतीय संस्कृति और साधना की अखण्ड परम्परा का एक सुयोग्यतम लोकसंग्रही गृहस्थ संत चला गया, जिसके जीवन का एक-एक श्वास गीतामृत से सुवसित एवं आलोकित था। लोकमान्य तिलक के बाद गीता का इतना अनन्य निष्ठावान भक्त शायद हुआ नहीं। गोयन्दका जी का सम्पूर्ण जीवन गीता के प्रकाश से प्रकाशित था। गीता के अमृत से ओतप्रोत था। एक शब्द में कहा जाए तो वे साक्षात् गीतामूर्ति थे, गीता के सशरीर अवतार ही थे। गीतानुसारी जीवन का ऐसा उदाहरण भारतीय संस्कृति और साधना के इतिहास में विरल ही है।

राजस्थान बीकानेर राज्य के चुरू नगर में सामान्य वैश्य कुल में जन्म, बंगाल के बांकुड़ा में व्यापार क्षेत्र, परंतु गोरखपुर का गीता प्रेस, कलकत्ते का गोविन्दभवन, चुरू का ऋषिकुल, ब्रह्मचर्याश्रम, ऋषिकेश स्वर्गाश्रम का गीता भवन, वृंदावन, धर्मक्षेत्र अखण्ड गंगा के प्रवाह की तरह, सूर्यनारायण की तरह जिसका कर्मयोगीजीवन, लोक सेवा में, लोक कल्याण में जीवन का एक-एक क्षण ऐसे थे श्रीमन्त सेठ श्री जयदयाल जी।

वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्।

बहुत बचपन में ही गीता हाथ लगी, एक सूत्र मिल गया जिसके सहारे सारे शास्त्र-पुराणों को अधिकतर लिया भारतीय संस्कृति और साधना के व्यापक क्षेत्र में जो कुछ भी, जितना कुछ भी सत्यं शिवं सुन्दरं है, उसे आत्मसात् कर

जीवन में चरितार्थ कर लिया। शास्त्र चिंतन चिंतनमात्र रह गया, वह जीवन का अविभेद्य अंग बन गया। गीता केवल कंठस्थ नहीं, हृदयस्थ, जीवनस्थ सांस-सांस में वे गीता ही जिये, गीता में ही जिये, गीता के लिये ही जिये। गीता का इतना महान अनन्य अनुरागी अब कहां मिलेगा?

और आश्चर्य होता है उनकी दैनिकचर्या को देखकर। प्रात:काल 4 बजे से रात के 11-12 बजे तक अखण्ड भाव से कर्मरत। कहीं प्रमाद नहीं, आलस्य नहीं, तन्द्रा नहीं, विश्राम नहीं, आराम नहीं, शिथिलता नहीं, उदासीनता नहीं। ऐसा लगता, यह व्यक्ति चिरजागरूक है, सतत सावधान है। जबसे होश संभाला और यज्ञोपवीत संस्कार से संपन्न हुए, नियमपूर्वक दोनों काल की संध्योपासना ठीक समय से-प्रात:काल की सूर्यनारायण के उदय के पूर्व, संध्याकाल की सूर्यास्त के पूर्व। यात्राओं में हो, सभाओं में हों, विचार-विमर्श में हों, बीमार हों, चाहे जहां भी हो, जैसे भी हों संध्योपासना के समय वे सब कुछ छोड़कर एकदम सहसा संध्या में लग जाते और क्या मजाल कि उनकी एक भी संध्या नागा हुई हो। गीता के समान ही संध्योपासना में उनकी अनन्यनिष्ठा थी। प्रात:कालीन संध्या के पश्चात वे नियमपूर्वक श्रीमद्भागवत गीता और श्री विष्णु सहस्त्र नाम का पाठ करते और योगासन करते। गीता और सहस्त्रनाम उन्हें खूब अच्छी तरह कण्ठस्थ थे, परन्तु पाठ की विधि ही है कि ग्रंथ देखकर पाठ किया जाए और नियमपूर्वक सुनते। गायत्री और हरिनाम के प्रति भी उनकी वैसी ही अनन्य निष्ठा थी।

कई बातों में उन्होंने अपने लिए नियमों का कवच बना लिया था- भोजन के संबंध में, वस्त्र के संबंध में। भोजन में वे कुल तीन चीजें लेते थे। हल्का सात्विक भोजन। गोदुग्ध पर उनका विशेष आग्रह था। वस्त्र भी शरीर पर बस एक धोती,एक चौबन्दी, एक चादर। कहीं जाना-आना होता तो सिर पर शर्बती रंग की पगड़ी और पैरों में फलाहारी जूते। जबसे होश संभाला चमड़े के जूतों का व्यवहार नहीं किया, विदेशी वस्त्र छुए नहीं, अंग्रेजी दवाइयां ली नहीं। अंग्रेजी दवा मात्र से उन्हें घृणा-सी थी। गोली, सुई,मिक्सचर किसी रूप में भी वे ग्रहण करने को तैयार नहीं होते। यहां तक कि कई अवसरों पर प्राण जाने का खतरा उठा लिया, परन्तु अंग्रेजी दवा लेने से साफ-साफ इन्कार कर दिया। इतना ही नहीं, स्वजनों को भी अंग्रेजी दवा के विष से सर्वथा मुक्त रखा। कितना विलक्षण था उनका सर्वतोमुखी आत्मसंयम का भाव-ऐसी तपश्चर्या जो सहज ही

उनके जीवन का अंग बन गयी थी।

श्रीमन्त गोयन्दका जी एक विशिष्ट मिशन लेकर आये थे और आपने अपना संपूर्ण जीवन, जीवन की एक-एक सांस को उस मिशन की पूर्ति में होम कर दिया। गीता उनकी समस्त प्रवृत्तियों के केन्द्र में थी और स्वयं गीतानुसारी जीवन बिताया, हजारों व्यक्तियों को उसी पावन पथ पर प्रवृत्त किया, प्रवृत्त कराया। उनके जीवन का कम्पास सदा गीतोन्मुखी रहा। गीता उनके लिये भगवान की केवल वाणी ही नहीं थी, भगवान का दिव्य मंगलमय विग्रह थी, भगवान का हृदय थी। भगवान ने अपना गीता रूपी हृदय गोयन्दका जी के हृदय में ढाल दिया था और गोयन्दका जी ने अमृतप्रसाद को पिछले साठ-पैंसठ वर्षों तक दोनों हाथ लुटाया, साहित्य प्रकाशित कर लुटाया, प्रवचनों द्वारा लुटाया, प्रोत्साहनों द्वारा लुटाया, स्वयं अपना वैसा ही जीवन बनाकर लुटाया। गंगा के अजस्त्र प्रवाह की तरह उनके गीता प्रवचनों का अजस्त्र प्रवाह चलता रहा। लगता था यह व्यक्ति केवल गीता के लिये ही इस पृथ्वी पर आया है।

इस महदनुष्ठान में उन्हें कई साथी मिले, परंतु तीन ऐसे मिले जो सर्वथा इस अनुष्ठान के अनुरूप ही थे। सबसे पहले विरल साथी, सखा, मित्र सचिव थे- घनश्यामदास जी जालान। आत्मसमर्पण की प्रतिमूर्ति थी, सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज का जीवन्त उदाहरण। समर्पण की जो सुषमा घनश्याम जी में देखने को मिली, वह आज की हिसाबी-किताबी दुनिया में कहां मिलती है? वे अपना जवाब आप ही थे- एक अद्वितीय अनन्य। गोयन्दका जी में उन्होंने अपना गतिर्भर्ता प्रभु साक्षी निवास: शरणं सुहृत् सब कुछ, सब कुछ पा लिया। सोते जागते पितेव पुत्रस्य सखेव सख्यु:, प्रिय: प्रियाया:। सेठ जी ने उन्हें अपना लिया। गोयन्दका जी की सारी कर्मशक्ति घनश्याम जी में स्वत: स्फूर्त हुई अपनी पूरी सजगता और तेजस्विता के साथ। यहां तक कि अखिल भारतीय तीर्थयात्रा में 104-105 डिग्री ज्वर और खांसी आदि के होते हुए, शरीर सर्वथा अस्वस्थ जीर्ण-शीर्ण होते हुए भी घनश्याम जी ने सेठ जी के अनुष्ठान को सविधि संपन्न किया ही। उन्होंने अपने तन-मन-धन को भी अपना नहीं माना, सब कुछ त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये। समर्पण की मनोहारी मूर्ति। गीता प्रेस के इतिहास में ही क्यों श्री गोयन्दका जी की समस्त प्रवृत्तियों एवं अनुष्ठानों तथा संकल्पों का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा मिलेगा, अमृताक्षरों में। आत्म निवेदन का सौन्दर्य एवं आनन्द क्या है, कैसा होता है? क्यों घनश्याम जी ने गंगा तट पर गोयन्दका जी

की गोद में अपना शरीर छोड़ा। ऐ मरण। तेरा कितना अनुपम पावन शृंगार उस दिन हुआ। जिस्म मृत्यु पर मानव की कौन कहे, देवता भी तरसते होंगे, ईर्ष्या करते होंगे।

यह नि:संकोच स्वीकार करना चाहिए कि घनश्याम जी के बाद गीता प्रेस शनै:शनै: श्रीहीन होने लगा। घनश्याम जी प्रेस के कर्मचारियों के सच्चे शुभचिंतक थे। उनके अभाव में वे अपने को अनाथ मानने लगे। गोयन्दका जी को अनायास किसी को खोजना या पुकारना होता तो घनश्याम को पुकार बैठते। बाद में होश आता कि उनका घनश्याम तो घनश्याम में जाने के बाद सेठ जी का जैसे परम अन्तरंग अनन्य सखा-सचिव-सेवक चला गया। उस अभाव की मूर्ति कोई न कर सका, वह सालता रहा।

हां, सेठजी की कर्मशक्ति की धारा घनश्याम जी में जैसे उतरी थी, वैसे ही उनकी भावशक्ति की धारा श्री पोद्दार जी (पूज्य श्री भाई जी श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार) में उतरी। उनसे भक्ति की एक मधुर प्रखर धारा बह निकली। श्री भाई जी ने हरिनाम का रस, लीला का रस बरसाना शुरू किया और हजारों नहीं, लाखों-लाखों व्यक्तियों को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में इस भावराज्य में प्रवेश कराया। यह कहा जा सकता है कि श्री भाई जी के कारण ही गीताप्रेस के साहित्य का इतना विकास हुआ और वह सभी क्षेत्रों में श्रद्धा और सम्मान पा सका, उसका इतना प्रचार-प्रसार एवं प्रभाव हो सका।

आरंभ में कहते हैं, श्री पोद्दार जी ने गोयन्दका जी को ही संबोधित कर-

'जय दयाल जय दयाल, जय दया सेवा'

कविता लिखी थी। भगवान महाविष्णु की पूजा-अर्चना का संस्कार भी संभवत: श्रीमन्त सेठ जी से ही प्राप्त हुआ होगा, परन्तु बाद में धीरे-धीरे श्री पोद्दार जी राधाकृष्ण के लीलारस में उतरते गये, उतरते-उतरते उसी में प्राय: खो गये- कल्याण में मधुर एवं राधाष्टमी उत्सव समारोह इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

स्वामी श्रीरामसुखदास जी को श्रीमन्त सेठजी का वैराग्य-तत्व मिला- कई बातों में, विचार में, आचार में, प्रचार में, उच्चारण में, की नामधुन, गीता की गहराई में उतरने की वही दक्षता, उसकी बारीकियों का वैसा ही सूक्ष्म विश्लेषण एवं उद्घाटन- लगता है सेठ जी ने अपना सारा ज्ञान घोलकर स्वामी जी को पिला दिया, परंतु फिर भी सेठ जी सेठ जी थे, स्वामी जी स्वामी जी हैं। यहां सेठ

जी को सारी गीता याद थी और उसके एक-एक श्लोक प्रिय थे, परन्तु फिर भी कुछ श्लोक विशेष प्रकार प्रिय प्रतीत होते थे- जिनमें से स्वयं श्रीमन्त सेठ जी का अन्तर्जीवन झांकता था-

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

× × ×

अनन्यांश्चिन्तयन्तो मां ये जनां पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

× × ×

मच्चिता मद्गतप्राणा बोधयन्त: परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यिन्ति च रमन्ति च॥

× × ×

कर्मण्यकर्म य: पश्येदकर्माणि च कर्म य:।
स बुद्धिमान मनुष्येषु सयुक्त: कृत्स्नकर्मकृतं॥

× × ×

भक्त्या मामभिजानति यावान्यश्रास्मि तत्वत:।
ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

× × ×

मन्मना भव मदभक्तो मद्याजी मां नमस्कुरू।
मामेवैध्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

× × ×

सर्वधर्मान् परित्याज्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्या सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:॥

श्रीमन्त सेठ जी के लिखे अनेक ग्रन्थ हैं- तत्व चिन्तामणि सात भाग परमार्थ-पत्रावली, आत्मोद्धार के साधन, ज्ञानयोग का तत्व, महत्वपूर्ण परम साधन शिक्षा, आदि-आदि। परन्तु उनकी सबसे प्रिय कृति है गीतातत्वविवेचनी। एक बार ऋषि ब्रह्मचर्याश्रम चुरू में सेठ जी ने स्वयं भाषण में स्वीकार किया था कि संस्कृत का पठन-पाठन तथा आयुर्वेद उन्हें विशेष प्रिय है। एक बार ऋषिकेश के सत्संग में पूछने पर बताया कि व्यर्थ के नौ-छ: में क्यों पड़ते हो- गंगा स्नान करो, संध्यागायत्री करो, गीता का स्वाध्याय करो और हरिनाम का आश्रय लो।

श्रीमन्त सेठजी हम सभी के अभिभावक थे, गार्जियन थे। एक बार ऋषिकेश जाते समय उनसे पटना स्टेशन पर मैं मिला। श्वांस कष्ट का उभार था। उसे कुछ दबाये रखने के लिये मुंह में पान लिए हुए थे। सेठजी ने देखा और पूछ ही तो लिया- क्यों पान खाने की आदत कब से पड़ गयी? उनके प्रति हम लोगों का सम्मान का श्रद्धा-आदर का भाव था। उनके सत्संग में समाधि का आनंद मिलता था। उनके अट्टहास से ऋषिकेश का समस्त वातावरण गूंजता था। बड़ा ही मुक्त अट्टहास था उनका। गंगा के तट पर हिमालय की गोद में ऋषिकल्प गृहस्थ संत ने सत्संग का सदाव्रत चलाया- पिछले पचास वर्षों से प्रतिवर्ष नियमित रूप से। गत वर्ष अतिशय अस्वस्थता के कारण नहीं जा पाए और इस वर्ष मात्र शरीर-त्याग के लिये ही उस उत्तराखण्ड पावन भूमि में गंगा के तट पर हिमालय की गोद में अपने प्रिय गीता भवन में सहस्त्र-सहस्त्र सत्संगी भाइयों से घिरे हुए पास ही श्री भाई जी, श्री स्वामीजी, रामसुखदास जी, स्वामी जी श्री चक्रधर जी, स्वामी भजनानंद जी, श्री मोहनलाल जी गीता का ध्यान करते हुए, गीतागायक का ध्यान करते हुए, हरिनाम की अमृतवर्षा में भगवान का प्रियभक्त भगवान की गोद में सदा के लिये सो गया॥

जो चादर सुर नर मुनि ओढ़े, ओढ़िके मैली कीन्ही चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़े ज्यों की त्यों धर दीन्ही चादरिया॥

सचमुच श्री जयदयाल जी की चादर पर कोई दाग नहीं पड़ा, उन्होंने साईं से उसे जैसी पायी वैसी ही ज्यों की त्यों बेदाग, साईं के चरणों ने धर दिया। सच्चा श्रीकृष्णार्पण का जीवन, श्रीकृष्णार्पण की प्रयोगशाला, कोटि-कोटि हृदयों की श्रद्धांजली उन पावन चरणों में श्रद्धापूर्वक, भक्तिपूर्वक, प्रीतिपूर्वक।

जयदयाल जी नहीं, परंतु जयदयाल जी चिर अमर हैं- जब तक ऋषिकेश की गंगा इस देश को पावन करती रहेगी, जब तक गीता प्रेस का साहित्य इस देश को ज्ञानालोकित करता रहेगा, जब तक ऋषिकुल, ब्रह्मचर्याश्रम एवं भजनाश्रमों की वेदध्वनि एवं हरिनाम का उद्‌बोध गूंजता रहेगा, तब तक भक्तप्रवर, ज्ञानिशिरोमणि, कर्मयोग की आदर्श मूर्ति श्री गोयन्दका जी का यश: शरीर अमर है, अमर है, अमर है।

ॐ शान्ति: ॐ शान्ति ॐ शान्ति
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।

श्री रतनलाल नागौरी, एडवोकेट

वैश्यशिरोमणि

अंतिम विक्रमादित्य - हेमचन्द्र

मध्यकालीन भारत का इतिहास लिखते समय इतिहासकारों ने एक

भारतीय (हिन्दू) नायक के प्रति बहुत अन्याय किया है। वे नायक हैं हेमचन्द्र विक्रमादित्य जिनका चलताऊ-सा उल्लेख इतिहासकारों ने बसंतराय, हेमू, हिमू, हेमू बनिया, हेमू बक्काल, हेमचन्द, हेमराय, हेमराज, विक्रमाजीत आदि नामों से किया है। वे एक साधारण वैश्य परिवार में पैदा होकर अपनी बुद्धि, चातूर्य और वीरता के बल पर दिल्ली के सम्राट बने थे। भले ही दुर्भाग्यवश वे केवल एक माह इस पद पर रह सके, लेकिन इससे उनका महत्व कम नहीं होता। उनके समकालीन मुगल बादशाहों के दरबारी इतिहासकारों ने अपनी नैसर्गिक चाटुकारिता के कारण उनका उल्लेख हिकारत से तिरस्कारपूर्ण शब्दों में किया है। मुगलों के दरबारी चाटुकारों की यह प्रवृत्ति तो समझ में आती है, परंतु घोर आश्चर्य है कि हमारे आधुनिक देशी इतिहासकारों ने भी पहले तो अंग्रेजों और फिर सेक्यूलर विचारधारा से प्रभावित होने के कारण उनके साथ यही अन्याय किया है।

हेमचन्द्र विक्रमादित्य के जन्मकाल, जन्मस्थान और जाति के विषय में इतिहासकारों में बहुत मत-भिन्नता है। फिर भी अधिकांश इतिहासकारों के अनुसार हेमचंद्र का जन्म सन् 1523 में रेवाड़ी (वर्तमान हरियाणा) एक दोसर वैश्य परिवार में हुआ था। उनके पिता राय पूरनदास एक धार्मिक व्यक्ति थे और बाद में राधावल्लभ सम्प्रदाय से प्रभावित होकर वृंदावन (मथुरा) चले गये थे। राय पूरनदास अपने परिश्रम और ईमानदारी के बल पर अपने समाज के चौधरी या सरदार बन गये थे, जिससे वे प्राय: सरकारी अधिकारियों के संपर्क में आया करते थे।

हेमचन्द्र की प्रारंभिक शिक्षा साधारण ही थी। कालान्तर में उनके पिता

की आर्थिक स्थिति बिगड़ जाने के कारण उन्हें कम उम्र में ही अपनी पढ़ाई छोड़कर व्यापार का कार्य करना पड़ा। प्रारंभ में वे एक साधारण विक्रेता या दुकानदार ही थे और शायद दलाली का कार्य भी करते थे। इसी से मुगल इतिहासकारों ने उन्हें हेमू बनिया या हेमू बक्काल कहा है। अपनी चतुराई के बल पर वे शीघ्र ही सरकार को माल की आपूर्ति करने वाले हो गये। पक्षपाती इतिहासकारों ने भी हेमचंद्र की विलक्षण व्यापारिक क्षमता को स्वीकार किया है।

उस समय दिल्ली पर एक अफगान बादशाह इस्लाम शाह का शासन था। उसके राज्यकाल में हेमचंद्र ने बहुत उन्नति की। उन्होंने अपनी बुद्धिमता और विश्वसनीयता के बल पर इस्लाम शाह का विश्वास जीत लिया और इस्लाम शाह ने उनको दिल्ली के बाजारों का सबसे बड़ा अधिकारी 'शाहना' या अधीक्षक बना दिया। हेमचंद्र ने शीघ्र ही और अधिक उन्नति की और इस्लाम शाह ने उनको खुफिया और डाक विभाग का प्रमुख बना दिया, जिसे दरोगा-ए-चौकी कहा जाता था। हेमचंद्र की इस द्रुत उन्नति से यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि वे अत्यन्त प्रतिभाशाली और विश्वसनीय थे और उनमें विलक्षण प्रशासनिक क्षमता थी।

लेकिन हेमचंद्र की इससे भी अधिक उन्नति मुहम्मद आदिल शाह के राज्यकाल में हुई। वह अपने सगे भान्जे को मौत के घाट उतारकर गद्दी पर बैठा था और पूरी तरह अनपढ़ था। उसने दिल्ली के बजाय ग्वालियर और चुनार में अपनी राजधानी बनायी क्योंकि इनको अपने लिए अधिक सुरक्षित समझता था। इस कारण दिल्ली पर दूसरे अफगान शासकों का अधिकार हो गया। आदिल शाह ने कई पुराने अधिकारियों को नयी-नयी जिम्मेदारियां दी थीं। हेमचन्द्र ने अपनी योग्यता से उसका भी विश्वास जीत लिया और शीघ्र ही मंत्री पद तक जा पहुंचे। अफगान दरबारियों में आपसी प्रतिस्पर्द्धा और वैमनस्य के कारण विभिन्न प्रकार के षड्यंत्र चलते रहते थे, जिनसे बादशाह भी सतर्क रहता था। इसलिए वह किसी अफगान दरबारी के बजाय एक हिन्दू अधिकारी पर अधिक विश्वास करता था। हेमचंद्र अपनी योग्यता और विश्वसनीयता पहले ही सिद्ध कर चुके थे। इसलिए आदिल शाह ने उनको अपनी सेना में एक उच्च अधिकारी (सेनानायक) बना दिया।

इतिहासकारों का कहना है कि आदिल शाह का सेनापति रहते हुए हेमचंद्र ने पानीपत के दूसरे प्रसिद्ध युद्ध से पहले बाईस युद्ध किये थे और वे इन

सभी युद्धों का विवरण ही उपलब्ध होता है। शेष सभी साधारण लड़ाइयां रही होंगी, जिनका उल्लेख करना इतिहासकारों ने आवश्यक नहीं समझा होगा। तथापि यह निश्चित है कि ये सभी युद्ध हेमचंद्र के सेनापतित्व में मुहम्मद आदिल शाह की ओर से लड़े गये।

इसी बीच हुमायूं ने शेरशाह सूरी के कमजोर उत्तराधिकारियों को परास्त करके दिल्ली और आगरा पर कब्जा कर लिया था और स्वयं को बादशाह घोषित कर दिया था, लेकिन शीघ्र ही सीढ़ियों से गिरकर उसकी मौत हो गयी। हुमायूँ की मौत का समाचार 18 दिन तक गुप्त रखा गया था जब तक कि उसका 13 साल 4 महीने का बेटा अकबर जालंधर से लौटकर बादशाह घोषित न हो गया। इस समाचार को आदिल शाह ने दिल्ली की खोयी हुई गद्दी को पाने का स्वर्णिम अवसर समझा और चुनार से हेमचंद्र के सेनापतित्व में 50 हजार घुड़सवारों और एक हजार हाथियों सहित एक बड़ी सेना भेज दी।

जैसे ही हेमचंद्र की सेना आगरा की सीमा पर पहुंची, अकबर का सेनापति सिकंदर खां उजबेक अन्य सेनापतियों के साथ अपनी सेना लेकर दिल्ली की ओर भाग गया। हेमचंद्र ने आगरा पर कब्जा कर लिया और भागती हुई मुगल सेना का पीछा तुगलकाबाद (जो वर्तमान कुतुबमीनार से मात्र पांच मील दूर पूर्व में है) तक किया। यहां दिल्ली के मुगल गवर्नर तारदी बेग खां ने एक बड़ी सेना के साथ उनका मुकाबला किया, परंतु मुंह की खायी और पंजाब की ओर जान बचाकर भाग गया। मैदान खाली देखकर हेमचंद्र ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया। यह युद्ध 7 अक्टूबर 1556 को हुआ था।

इस समय तक हेमचंद्र का आत्मविश्वास अपनी युद्ध विजयों के कारण इतना बढ चुका था कि उन्होंने मुहम्मद आदिल शाह को दिल्ली की गद्दी पर बैठाने की कोई उत्सुकता नहीं दिखायी। उन्होंने स्वयं को दिल्ली का राजा घोषित कर दिया और विक्रमादित्य की उपाधि धारण की। यद्यपि इतहासकारों में इस बात पर काफी मतभेद है कि हेमचंद्र आदिल शाह के प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर रहे थे या स्वतंत्र शासक के रूप में परंतु उन्होंने जिस प्रकार अपने लिए विक्रमादित्य की उपाधि प्राप्त की और हेमचंद्र विक्रमादित्य के नाम से सिक्के चलवाये उससे यही सिद्ध होता है कि भले ही युद्ध उन्होंने आदिल शाह की ओर से लड़ा था, परंतु उसे जीतने के बाद वे स्वतंत्र शासक बन गये थे। इसलिए अधिकांश इतिहासकार इस बात को स्वीकार करते हैं कि हेमचंद्र विक्रमादित्य मध्यकालीन

भारत के एकमात्र हिन्दू राजा थे, जो दिल्ली के सिंहासन पर बैठे थे। यह अवश्य है कि वे इस सिंहासन पर केवल 30 दिन बैठ सके। 7 अक्टूबर 1556 जिस दिन उन्होंने तुगलकाबाद का युद्ध जीता, से लेकर 5 नवम्बर 1556 तक जिस दिन उन्होंने पानीपत के दूसरे युद्ध में अकबर के सामने अपने रक्त की आखिरी बूंद गिरायी थी। जिस समय तुगलकाबाद का युद्ध चल रहा था, 13 साल का अकबर अपने संरक्षक बैरम खां के साथ जालंधर में था और सुल्तान इब्राहीम सूरी के प्रतिरोध से निबट रहा था। बैरम खां ने हेमचंद्र के संभावित आक्रमणों का मुकाबला करने के लिये सिकंदर खां उजबेक को आगरा में, तारदी बेग खां को दिल्ली में और अली कुली खां को संभल में तैनात कर रखा था। लेकिन हेमचंद्र ने अकबर के तीनों सेनापतियों को परास्त कर डाला और आगरा तथा दिल्ली पर अधिकार कर लिया।

यह समाचार पाकर बैरम खां ने दरबारियों की बैठक बुलवायी, जिसमें आगे की योजनाओं पर विचार करना था। अधिकांश दरबारियों की राय थी कि अकबर को वापस काबुल लौट चलना चाहिए क्योंकि अधिक से अधिक 20 हजार की सेना, जो अकबर एकत्र कर सकता था, से हेमचंद्र की एक लाख की सेना का मुकाबला करना आत्महत्या के समान होता। लेकिन बैरम खां मुकाबला करने के पक्ष में था और उसने किसी तरह अकबर को इस बात के लिये राजी कर लिया। इसका एक कारण यह भी था कि काबुल भी अकबर के लिये सुरक्षित नहीं रह गया था क्योंकि वहां पहले ही मिर्जा मुहम्मद हाकमि ने अपना मजबूत शासन स्थापित कर लिया था। बैरम खां ने अपनी स्थिति मजबूत करने के लिये तारदी बेग खां को भगोड़ा बताकर मृत्युदण्ड दे दिया, हालांकि वह भगोड़ा नहीं था, बल्कि बाकायदा उसने तुगलकाबाद में हेमचंद्र का मुकबाला किया था और पराजित होने के बाद ही जान बचाकर भागा था।

अन्ततः हुआ यह कि बैरम खां के साथ अकबर अपनी सम्पूर्ण सेना जितनी भी वह एकत्र कर सका था, लेकर पानीपत के उस सपाट मैदान में आ डटा, जहां तीस वर्ष पूर्व उसके दादा बाबर ने पानीपत की पहली लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध युद्ध में इब्राहीम लोदी की अफगान सेनाओं को परास्त किया था और मुगल साम्राज्य की नींव डाली थी। इधर हेमचंद्र विक्रमादित्य के नेतृत्व में हिन्दुओं और अफगानों की सम्मिलित सेना भी उनको सदा के लिये समाप्त कर देने के लिये एकत्र हो गयी थी।

इतिहासकारों ने लिखा है कि इस भीषण युद्ध में हेमचंद्र विक्रमादित्य की सेना अकबर की सेना पर भारी पड़ी और उनकी पूर्ण विजय नजदीक ही थी, अब हाथी पर बैठकर युद्ध कर रहे हेमचंद्र विक्रमादित्य की आंख में एक तीर आकर लगा और काफी भीतर तक धंस गया। पीड़ा से बिलबिलाकर हेमचंद्र विक्रमादित्य अपने हौदे में गिर गये तभी उनके महावत ने उनको युद्ध क्षेत्र से बाहर ले जाने का प्रयास किया, लेकिन एक मुगल सेनानायक की नजर उस पर पड़ गयी। उसने तत्काल महावत को मार डाला और हाथी को बलपूर्वक हांक ले गया। लगभग इसी प्रकार अंतिम समय में आंख में तीर लग जाने के कारण सन् 1571 में सिन्ध के राजा दाहिर जीतते-जीतते मुहम्मद बिन कालिस की सेना से हार गये थे।

अपने स्वामी हेमचंद्र विक्रमादित्य को मृत समझकर उनकी सेना बिखर गयी। अर्द्धमूर्च्छित हेमचंद्र को तत्काल ही अकबर के सामने ले जाया गया। वहां बैरम खां ने अकबर से कहा कि वह अपने शत्रु का सिर स्वयं काट दे। अकबर उस समय बालक ही था, उसने कभी तलवार भी नहीं चलायी थी। उसने केवल अपनी तलवार की नोक से हेमचंद्र के सिर को छुआ और उसके तत्काल बाद ही बैरम खां ने स्वयं अपनी तलवार निकालकर हेमचंद्र विक्रमादित्य का सिर काट दिया।

इस बर्बर घटना का वर्णन मुगलों के चापलूस दरबारी इतिहासकारों ने इस रूप में किया है कि अकबर बड़ा दयालु था, वह हेमचंद्र को मारना नहीं चाहता था, लेकिन उसके संरक्षक और सेनापति बैरम खां ने हेमचंद्र को मार डाला। सत्य चाहे जो भी हो किन्तु इतिहास का सच यही है कि हेमचंद्र विक्रमादित्य मध्यकालीन भारत के एकमात्र हिन्दू राजा थे, जो अपने गुणों के बल पर दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ हुए और अपने तथा देश के दुर्भाग्य के कारण केवल 30 दिन तक इस पद पर रहने के बाद कालकवित्त हो गये। यह आश्चर्य ही है कि स्वतंत्र भारत के इतिहासकारों की भेड़चाल में फंसकर इस महान हिन्दू योद्धा के प्रति न्याय नहीं किया है। इतिहासकारों की भूल को अब सुधार लिया जाना चाहिए और हेमचंद्र विक्रमादित्य का इतिहास अनिवार्य रूप से विस्तारपूर्वक पढ़ा जाना चाहिए।

-विजय कुमार सिंघल
111-326, अशोकनगर, कानपुर

प्रथम भारतीय न्यायाधिपति

सर शादीलाल अग्रवाल

करते हैं जो अनुपम कार्य
बन जाता वो इतिहास है।
मस्तक धूल लगाने उनकी
झुक जाता आकाश है॥

जो सबसे अग्रणी रहे, आगें बढ़-चढ़ कर कार्य करे वह होता है- अग्रवाल। ऐसी ही महान अग्रवाल विभूतियों में, ऑनरेबल सर शादीलाल अग्रवाल का नाम अग्रणी है, जिन्हें भारत के इतिहास में सर्वप्रथम भारतीय के रूप में किसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश पद प्राप्त करने का श्रेय प्राप्त है। यह सम्पूर्ण अग्रवाल समाज के लिए ही नही, पूरे भारत के लिए गौरव की बात थी कि आपके रूप में प्रथम बार किसी भारतीय को उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का पद प्राप्त करने का गौरव प्राप्त हुआ।

आपका जन्म 12 मई 1874 को जिला महेन्द्रगढ़ के रिवाड़ी नगर में एक अत्यंत सम्भ्रांत एवं कुलीन अग्रवाल परिवार में हुआ। आपके पिताश्री व्यापारियों में विशिष्ट स्थान रखते थे। पूत के पांव पालने में ही दिखाई दे जाते हैं- इस कहावत के अनुसार श्री शादीलाल ने अपनी प्रतिभा को बचपन से ही प्रकट करना शुरू कर दिया था। आपने 1890 में मैट्रिक परीक्षा प्रथम स्थान ग्रहण करके उत्तीण की और छात्रवृत्ति को प्राप्त किया। उसके बाद आप उच्च अध्ययन हेतु फोरमैन क्रिश्चियन कॉलेज लाहौर में प्रविष्ट हुए और तत्पश्चात् राजकीय महाविद्यालय लाहौर से स्नातक परीक्षा प्रथम स्थान से उत्तीर्ण कर अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया और योग्यता छात्रवृत्ति को अर्जित कर समाज का नाम ऊंचा करने में सफलता प्राप्त की।

आपने स्नातकोत्तर परीक्षा में भौतिक विज्ञान में विशिष्टता सहित उत्तीर्ण की तथा भारत सरकार से एक बार पुनः छात्रवृत्ति अर्जित कर प्रतिभा की छाप को अंकित किया।

आपने अपना प्रतिभाशाली विद्यार्थी जीवन भारत में पूर्ण करने के पश्चात आक्सफोर्ड वैलीयोल कॉलेज में प्रवेश लिया। आपने वहां भी वैचलर सिविल ला परीक्षा में विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त किया और आपको सवैधानिक कानून में विशिष्ट पुरस्कार मिला। आपने बोर्डन संस्कृत, बोर्डन ला तथा कानूनी शिक्षा के स्कॉलर भी रहे। इस प्रकार आपका पूर्ण शैक्षणिक काल अत्यन्त गौरवमय तथा विशिष्ट रहा । इसी कारण आप ग्रे. इन. के न्यायालय में आमंत्रित किए गए और आप वहीं से कानूनी स्नातक भी बने।

विदेश से अपना अध्ययन पूर्ण करने के बाद आपने लाहौर में वकालत प्रारम्भ की। अपनी योग्यता एवं प्रतिभा के बल पर उन्हें उच्च न्यायालय, लाहौर का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया। किसी भी उच्च न्यायालय में मुख्य न्यायाधीश का पद प्राप्त करने वाले आप प्रथम भारतीय थे और इस प्रकार आपने अपनी प्रतिभा से उक्त गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर सम्पूर्ण भारतीय समाज को गौरवान्वित किया।

आप इस मध्य पंजाब विधान परिषद् के सदस्य भी निर्वाचित हुए। विधान परिषद में जाने का उनका मुख्य उद्देश्य न्यायिक संरचना में व्यापक सुधार लाना था।

सन् 1934 में आप मुख्य न्यायाधीश के पद से सेवानिवृत्त हुए और आपकी प्रतिभा को देखते हुए आपको तत्काल इंग्लैण्ड की प्रिविकौंसिल की न्यायिक समिति का सदस्य नियुक्त कर दिया गया, जो कि उस समय भारत के सभी उच्च न्यायालयों की अपील के लिए सर्वोच्च न्यायालय था। सन् 1938 में स्वास्थ्य अनुकूल न रहने के कारण आप भारत आ गए और यहीं देहली में वकालत करने लगे।

मार्च 1945 में अग्रकुल भूषण सर शादीलाल का 71 वर्ष की अवस्था में देहावसान हो गया। आपने अपना सम्पूर्ण जीवन भारत के नाम एवं उसकी गौरव-गरिमा को महिमान्वित करने में लगाया। आप नियमों के पक्के एवं सिद्धान्तवादी थे। विदेशों में रहते हुए भी आप पूर्णतः शाकाहारी रहे तथा कभी मद्यपान नही किया । आप अपनी निष्पक्षता के लिए विख्यात थे। इतने उच्च पद पर पहुंचने के लिए आपको अहंकार छू तक नहीं गया। समाजसेवा में आपकी प्रवृत्ति रही। आपके द्वारा बनाया गया सर शादीलाल अस्पताल आज भी रिवाड़ी की जनता की सेवा करने में सलंग्न है। आपने जिला मुज्जफरनगर में चीनी की दो

मिलें भी स्थापित की।

यह विशेष गौरव की बात है कि सर्वप्रथम राजनीतिक संगठन हिन्दु महासभा के गठन का विचार आपने ही दिया था और वे उसके श्रेष्ठ कार्यकर्त्ताओं में से एक थे।

आपके दो पुत्र राजेन्द्र लाल एवं नरेन्द्र लाल बार-एट-ला है। श्री राजेन्द्र लाल मंसूरपुर सर शादीलाल सुगर मिल, दिअपर दो आब शुगर मि.मि. शामली आदि के प्रमुख संचालक है और राजेन्द्र लाल शादीलाल एण्ड क. लि. बम्बई, मशीनरी पेण्टस एंड केमिकल्स इण्डिया लि.बम्बई, एलीकोन इंजीनियरिंग कं. लि. गुजरात आदि के निदेशक रहे है। समाज सेवा कार्यो में आपकी गहन रूचि है। आपने मुज्जफरनगर के निकट शुक्रताल में गंगातट पर लाखों रूपयों की लागत से विशाल मंदिर का प्लेट फार्म बनवाया है। अनेक सार्वजनिक संस्थाओं में सम्बद्ध हैं।

दूसरे पुत्र श्री नरेन्द्र लाल बार-एट-ला है। आप अपने अन्य व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के अतिरिक्त शामली डिस्टलरी तथा पिलखनी डिस्टिलरी का संचालन भी करते है। आप डिस्टिलर्स ट्रेडिंग कार्पोरेशन प्रा.लि. नई दिल्ली, मैं. कुमार ब्रोज पाउडर लि. नई दिल्ली, दिल्ली सेफ डिपाजिटस कं. लिं. नई दिल्ली अपर दो आब शुगर मिल्स लि. शामली आदि अनेक प्रतिष्ठानों के निदेशक है। आपने अपने पूज्य पिता श्री शादीलाल जी कि पुण्य स्मृति में शामली कस्बे में 10 लाख रूपयों की लागत से एक विशाल अस्पताल का निर्माण भी कराया है, जो आधुनिक सुख -सुविधाओं से सम्पन्न है। आप अपने पूज्य पिताश्री की स्मृति में प्रतिवर्ष राष्ट्रीय स्तर पर खेल-कूद प्रतिस्पर्द्धाओं का आयोजन भी करते है।

अग्रवाल समाज को आप जैसी महानविभूति पर गर्व है।

- श्री खुशीराम कानोडिया

अग्र गौरव

ओमप्रकाश जिन्दल

इस परिवर्तनशील संसार में उस मनुष्य का जन्म लेना सार्थक है जिसके जन्म लेने से देश जाति और समाज का अभ्युदय होता है, कुल पवित्र होता है, जननी कृतार्थ होती है और वसुंधरा पुण्यवती कहलाती है। प्रत्येक महापुरुष अपने प्रतिभा-संपन्न निखरित व्यक्तित्व से युग को प्रभावित करता है। ऐसे ही महापुरुष थे अग्रगौरव श्री ओमप्रकाश जिन्दल जिन्हें गरीबों का मसीहा, स्टील उद्योग का बादशाह कहा जाता था और जिन्होंने उद्योगपतियों में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की थी। वे अग्रवाल समाज के गौरव थे। जिसको फोर्ब्स पत्रिका ने विश्व के टॉप छह सौ धनाढय व्यक्तियों की सूची में जिन्दल उद्योग के चेयरमैन श्री ओमप्रकाश जिन्दल को शामिल कर उन्हें 548वां स्थान दिया था। पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य ने 4 नवम्बर 2004 में कलकत्ता में एक भव्य समारोह में श्री जिन्दल द्वारा अस्पताल व स्टेनलैस स्टील के क्षेत्र में दिए गए अमूल्य योगदान के लिये उन्हें लाइफ टाइम अचीवमेंट अवार्ड से सम्मानित किया।

श्री ओमप्रकाश जिन्दल का जन्म 7 अगस्त सन् 1930 में नलवा गांव (हरियाणा) में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री नेतराम और माता का नाम श्रीमती चंद्रावती देवी था। श्री जिन्दल पांच भाइयों में तीसरे स्थान पर थे तथा उनकी पांच बहनें थीं। उन्होंने अपनी किशोरावस्था में शिक्षा के साथ-साथ कृषि में अपने परिवार का हाथ बंटाया। दूसरी कक्षा आपने नलवा गांव के स्कूल में पास कर वे हिसार के पास हांसी अपने बड़े भाई के साथ पढ़ने चले गए थे। उनके शिक्षक उनके पिताजी से कहते थे कि ओमप्रकाश पढ़ाई की जगह मशीनों के काम में अधिक रुचि लेते हैं। इस प्रकार वे शिक्षा की विधिवत योग्यता प्राप्त नहीं कर सके।

श्री ओमप्रकाश जिन्दल को युवा अवस्था में अपने शरीर को हृष्ट-पुष्ठ रखने में रुचि थी वह कहा करते थे- मैं पहलवान बनना चाहता हूं। वे कुश्ती

लड़ने के शौकीन थे उनकी मां कहा करती थी अगर तुम कुश्ती लड़ना चाहते हो तो अवश्य लड़ों पर घर पर अगर कुश्ती में हार जाओ तो रोते हुए न आना। अगर तुम लड़ते हो तो लड़ों जीतने के लिये। यही मां के वचन उनके जीवन की सफलता के आधार बनें। उनको घुड़सवारी का शौक था वे जब खेतों में निरीक्षण करने जाते तो घोड़े पर ही जाते थे। उनको बूंदी का लड्डू बहुत पसन्द था। वे गाय का दूध पसन्द करते थे कहते थे कि गाय का दूध दिमाग को तेज करता है और भैंस का दूध पीने से भैंस जैसे बन जाते हैं। उन्हें गायों में बड़ी श्रद्धा थी वे गायों की सेवा में विश्वास रखते थे। उन्होंने अपने घर भी गाय ही पाली थीं।

सन् 1946 में 16 वर्ष की आयु में उनका विवाह विद्या देवी से हो गया था। उनकी पत्नी के असामयिक निधन हो जाने के बाद 34 वर्ष की आयु में उनका पुनर्विवाह विद्या देवी की छोटी बहन सावित्री देवी से कर दिया गया। उनके परिवार में चार पुत्र और पांच पुत्रियां हैं।

ओमप्रकाश जिन्दल का औद्योगिक सफर कलकत्ता से शुरू हुआ। उनके दो बड़े भाई श्री देवी सहाय व भावी चन्द सन् 1947 में हलवा गांव से कलकत्ता व्यापार करने के लिये चले गये थे। वहां कपड़े का व्यापार कर रहे थे। युवा ओमप्रकाश जिन्दल जब वे 16 वर्ष के थे कलकत्ता अपने भाइयों के पास आ गए और उनके कारोबार में हाथ बटाने लगे। एक बार कार्यालय से अपने घर की ओर जाते समय उन्होंने गली में पड़े लोहे के पाइपों को देखा, जिन पर लिखा था 'Made in England' यह देखकर उनके मन में देशभक्ति की भावना और अधिक जागृत हुई। उन्होंने विचार किया कि ऐसे पाइप हम अपने देश में क्यों नहीं बना सकते? इसके बाद उन्होंने स्टील पाइप निर्माण व विपणन के बारे में गहन अध्ययन किया और स्टील पाइप बनाने का निर्णय कर लिया।

सन् 1952 में उन्होंने पश्चिम बंगाल के लिलुआह में स्टील पाइप, बैंड व सॉर्केट बनाने की पहली इकाई स्थापित की। उस समय देश में इस तरह का उत्पादन करने वाली केवल दो कम्पनियां थीं- एक टाटा ट्यूब्स तथा दूसरी कीलंगा ट्यूब्स। दोनों कंपनियों का उत्पादन इतना नहीं था कि देश की मांग को पूरा कर सकें। श्री जिन्दल का लिलुआह में पाइप का उत्पादन इतना बढ़ा कि उसने प. बंगाल सहित पूर्वोत्तर राज्यों में भी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। इस कार्य में उनके बड़े भाइयों ने भी सहयोग देना शुरू कर दिया। वे बिक्री व वित्त का कार्य देखते थे। वहां अच्छा कारोबार जम जाने के बाद भी उनका वहां मन नहीं लगा

और वे सन् 1957 में हिसार वापस आ गए।

हिसार में आकर उन्होंने जिन्दल इंडिया लि. की स्थापना की और लोहे की बाल्टियां बनाने का कार्य शुरू किया। बाद में इस इकाई का रूपांतर कर स्टील पाइप बनाने का काम शुरू किया। जैसे-जैसे इसका उत्पादन बढ़ा जिन्दल इंडिया का नाम जिन्दल इंडस्ट्रीज रख गया। उन्होंने सन् 1970 के दशक में जिन्दल स्ट्रिप्स के नाम से उद्योग लगाया सन् 1977 में जिन्दल स्ट्रिप्स लि. भारत का सबसे अधिक स्टेनलैस स्टील बनाने वाला बन गया। अब जिन्दल ग्रुप की अमेरिका के अतिरिक्त देश के विभिन्न भागों से 20 से अधिक इकाइयां हैं। महाराष्ट्र में दो इकाइयां जिन्दल आयरन एण्ड स्टील कंपनी लि. (जिस्को) के नाम से स्थापित की। पहली इकाई तारापुर में स्टील स्लेब्स व दूसरी होट रोल्ड प्लेट की वासिंद में लगाई। उत्तर प्रदेश में कोसी कलां सॉ पाइप की फैक्ट्री लगाई। विशाखापट्टनम (आ.प्र.) में जिन्दल फैरो एलाइज की स्थापना की। छत्तीसगढ़ में रायगढ़ में लाडनू (राजस्थान) के विश्वविद्यालय के विकास के लिये लाखों रुपया दान में दिया। अग्रसेन गौशाला अग्रोहा के लिये कई एकड़ जमीन दान में दी। इसके अतिरिक्त श्री गौशाला (डबवाली) श्री वैष्णव अग्रसेन गौशाला (अग्रोहा) और श्री हरियाणा कुरूक्षेत्र गौशाला (हिसार) को वे उदारतापूर्वक वित्तीय सहायता देते थे।

देश के विभिन्न स्थानों में स्कूल खोलने के अतिरिक्त बाबूजी अन्य शैक्षणिक संस्थाओं की गतिविधियों को बढ़ाने में भी रुचि लेते थे। जब भी कोई इस प्रकार की संस्था का पदाधिकारी उनके पास सहायता के लिये जाता तो उनका रवैया हमेशा सकारात्मक होता। वे पुस्तकें पढ़ने के शौकीन तो न थे परंतु पुस्तकों के प्रकाशन करने के लिये सदैव तत्पर रहते थे।

उन्होंने अपने भाइयों के सहयोग से 5 मई 1968 को हिसार में संसाधनों से सुसज्जित धर्मार्थ अस्पताल की स्थापना की। इसका नाम था एन.सी. जिन्दल आई एण्ड जनरल हॉस्पीटल। इस हस्पताल का नाम उनके पूज्य माता-पिता श्री नेतराम और श्रीमती चंद्रवती के नाम पर रखा गया था। आजकल इसका नाम- एन.सी. जिन्दल इन्स्टीट्यूट ऑफ मेडिकल केयर एण्ड रिसर्च है।

हिसार के जिन्दल अस्पताल के अतिरिक्त बाबूजी का नाम महाराज अग्रसेन मेडिकल कॉलेज अग्रोहा के साथ भी अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ था। उनके भाइयों तथा परिवार के अन्य सदस्यों व रिश्तेदारों ने करोड़ों रुपया मेडिकल

कॉलेज के लिए दान में दिया। उनके अमूल्य सहयोग के लिये बाबूजी को दो बार 23 फरवरी1998 और 1 सितम्बर 2002 में सर्वसम्मति से सोसायटी का अध्यक्ष चुना गया। जीवन के अंत तक उन्होंने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह किया। उन्होंने इस मेडिकल कॉलेज के लिये चंदा इकट्ठा करने में अनथक प्रयास किया।

अग्रोहा धाम के विकास में भी बाबूजी की भूमिका किसी से कम नहीं है। वे स्वर्गवास के समय तक अग्रोहा विकास ट्रस्ट के संरक्षक थे। अग्रोहा धाम के निर्माताओं में से वे प्रमुख थे। ओमप्रकाश जी के सबसे बड़े भाई श्री देवीसहाय अग्रोहा विकास ट्रस्ट के संस्थापक प्रेसीडेंट थे। यद्यपि बाबूजी जन्म से सनातन धर्मी थे फिर भी वे आर्य समाज के लिये निरंतर सहयोग देते रहते थे। परोपकार हेतु अनेक क्षेत्रों में दान दिया। शायद ही कोई ऐसी जन कल्याण संस्था होगी जिसे उन्होंने वित्तीय सहायता न दी हो। देश के सामाजिक-धार्मिक संगठनों के अतिरिक्त वे प्राकृतिक आपदाओं के पीड़ितों की भी दिल खोलकर सहायता करते थे।

स्पंज आयरन, हॉट-रोल स्ट्रीप्स व फाइल का उत्पादन शुरू किया। यह एशिया की सबसे बड़ी व विश्व की दूसरी सबसे बड़ी इकाई है। श्री जिन्दल ने बोरानामालु (विजयनगर) में पहली बार संयुक्त उद्यम लगाया, जिसे कर्नाटक राज्य औद्योगिक निवेश विकास निगम ने हिस्सेदारी की। यहां तक भी श्री जिन्दल में उन्नति व आगे बढ़ने की इच्छा कम नहीं हुई। आगे बढ़ना तरक्की करना उनका ध्येय था। आयरन ऑक्सीजन डीकार्बाराइजेश कन्वर्टर की स्थापना का श्रेय श्री जिन्दल को ही जाता है। स्टील उद्योग में भी लोहा उत्पादन की इकाई लगाई गई। उड़ीसा के जिला जलपुर के गांव डुबरी में 4 हजार करोड़ रुपये की औद्योगिक योजना अंतिम चरण में है। चार दशक पूर्व में लोहे की छोटी सी फैक्ट्री लगाकर उद्योग जगत में प्रवेश करने वाले ओमप्रकाश जिन्दल का इस मंजिल तक पहुंचना उनके बुलंद हौंसले व कठोर परिश्रम का ही परिणाम रहा है। उन्होंने जीवन में जो चाहा व पाया और विश्व में हिसार का नाम चमकाया। यह सब उद्योग उनके चारों पुत्र संभाल रहे हैं। श्री पृथ्वीराज जिन्दल सॉ पाइप लिमिटेड कोसी, कल्याण मंद्रा, नासिक, नई दिल्ली व वॉय टाउन (अमेरिका) के संस्थान देखते हैं। श्री सज्जन जिन्दल जिन्दल विजयनगर स्टील लि., वासिंद तारापुर व ब्रह्मचारी स्थित फैक्ट्रियां देखते हैं। श्री रतन जिन्दल-जिन्दल स्टेनलैस

लि. हिसार, विशाखापट्टनम फैरोक्रोम प्लांट, उड़ीसा में स्टील व फैरोक्रोम प्लांट देखते हैं। सबसे छोटे पुत्र श्री नवीन जिन्दल (सांसद) जिन्दल स्टील व पॉवर लि. रायगढ़, रायपुर स्थित फैक्ट्रियां, आयरन और माइंस उड़ीसा तथा कोल माइंस उड़ीसा का कार्य उनके पास है। श्री ओमप्रकाश जिन्दल को लोग हिसार में व जहां उनके उद्योग लगे हैं। बाबू जी के नाम से जानते थे। बाबूजी ने औद्योगिक जगत में इतना ऊंचा स्थान प्राप्त किया कि लोग उन्हें स्टील किंग भी कहते थे। बाबूजी का सामाजिक कार्यों में भी बड़ा योगदान रहा है। उन्होंने अपनी जन्मभूमि नलवा को एक आदर्श गांव बनाया। वहां एक स्कूल कक्षा 12 तक एक डिग्री कॉलेज तथा एफआईटीआई की स्थापना की। वहां पशु चिकित्सालय, सिविल हॉस्पीटल, बच्चों का चिकित्सालय तथा गीता भवन की स्थापना की। शिक्षा के क्षेत्र में विद्यार्थियों के लिये भी बहुत कार्य किए- हिसार में कन्याओं के लिये विद्या मंदिर स्कूल, रायगढ़ में जिन्दल स्कूल, दिल्ली में एनसी जिन्दल स्कूल बनवाकर शिक्षा के क्षेत्र में उनका बड़ा योगदान रहा है।

उद्योग जगत में शिखर पर पहुंचकर उन्होंने सन् 1990 में राजनीति में प्रवेश किया। राजनीति में आने का उनका उद्देश्य था समाज और देश की सेवा करना। सन् 1991 में हिसार विधानसभा क्षेत्र से विधायक निर्वाचित हुए। सन् 1996 में कुरूक्षेत्र से लोकसभा के लिये सांसद् चुने गए। सन् 2000 में दोबारा हिसार विधानसभा क्षेत्र से विधायक निर्वाचित हुए। तीसरी बार सन् 2005 के विधानसभा चुनाव में हिसार से निर्वाचित हुए और उन्हें ऊर्जा मंत्री का पद दिया गया। दुख इस बात का है कि वे मंत्री बनने के बाद केवल 21 दिन जीवित रहे। 31 मार्च 2005 को चण्डीगढ़ से दिल्ली अपने हैलीकॉप्टर से जा रहे थे कि हैलीकॉप्टर रास्ते में ही दुर्घटनाग्रस्त हो गया। इस दर्दनाक दुर्घटना में वे हमेशा-हमेशा के लिये संसार से विदा हो गए। उनकी जो इच्छाएं थीं कि हिसार को एक अच्छा शहर बनाया जाए, हरियाणा राज्य को हर समय बिजली मिले आदि उनके सपने अधूरे रह गए। श्री ओमप्रकाश जिन्दल लोगों के दिल में सदा बसे रहेंगे। अग्रवाल समाज ही क्या सारा स्टील उद्योग उन्हें सदा याद रखेगा। उनकी कार्यपद्धति तथा कर्म के प्रति समर्पण भाव तथा उनके सिद्धान्तों का अनुकरण करके ही उनके अमिट योगदान के प्रति कृतज्ञता प्रकट की जा सकती है।

-विनोद शंकर गुप्त
ए-14 न्यू स्टाफ कॉलोनी, जिन्दल स्टेनलैंस लि. दिल्ली रोड, हिसार

अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान, महान भाषाविद
एवं साहित्यमनीषी राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्राण

डॉ. रघुवीर

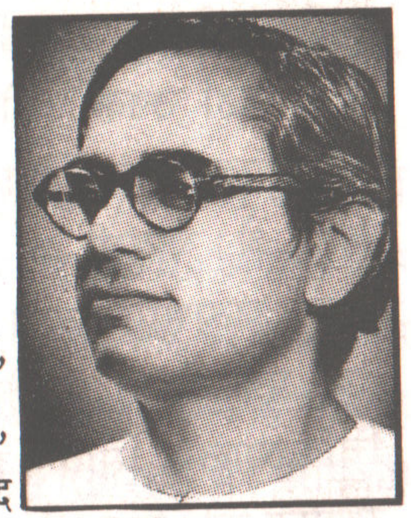

डॉ. रघुवीर भारतीय संस्कृति के महान पुरोधा, अंतराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान, उच्चकोटि के मनीषी, भारतीय संविधान सभा के सदस्य, श्रेष्ठ सांसद, भाषाविद और हिन्दी के अनन्य समर्थक थे। भारतीय संविधान के लिए हिन्दी शब्दावली तैयार करने जैसा कठिन कार्य कर उन्होंने महान मनीषा एवं प्रतिभा का परिचय दिया था। भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष एवं सासंद के रूप में उन्होंने भारतीय राजनीति को नई दिशा दी। उन जैसा महान मनीषी, भाषाविद, कोटि का साहित्यकार और भारतीय संस्कृति का विद्वान राष्ट्रीय तो क्या अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र तक में दुर्लभ है। अग्रवाल समाज ऐसी महान मनीषी को जन्म देकर वास्तव में गौरव का अनुभव कर सकता है। डॉ. रघुवीर अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के प्रसिद्ध विद्वान, हिन्दी के अनन्य समर्थक और भारतीय सभ्यता संस्कृति एवं राजनीति के दृढ़ स्तम्भ थे। उन जैसा महान व्यक्तित्व एवं मनीषी का जन्म किसी भी देश में बड़े ही भाग्य से शताब्दियों बाद होता है। उन्होंने अपनी प्रतिभा एवं क्षमता से राष्ट्रभाषा हिन्दी के अनन्य कोष को भरने एवं समृद्ध बनाने का जो कार्य किया, वह अभूतपूर्व है, अनन्य है। वे सिद्धांत एवं उच्च कोटि के जीवन मूल्य पर आधारित राजनीति के विशिष्ट स्तम्भ थे। उन्होंने विदेशों में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के उन्नयन प्रचार-प्रसार के लिए जो कार्य किया, उसकी स्मृति आने वाले युगों में भी बनी रहेगी। वे वास्तव में उच्चकोटि की भारतीय मनीषा के धनी थे और उन्होंने अपनी उत्कट प्रतिभा से जीवन के विविध क्षेत्रों को एक साथ आलोकित किया था। एक अग्रवाल परिवार में जन्म लेकर उन्होंने अपने जीवन में जो कार्य किए वे नि:संदेह समाज की गौरव गरिमा के अनुरूप थे और उनके महान कार्यों एवं उपलब्धियों से नि:संदेह अग्रवाल समाज गौरवान्वित हुआ।

डॉ. रघुवीर का जन्म 1902 में रावलपिंडी के एक सामान्य अग्रवाल

परिवार में हुआ। उन्होंने लाहौर में पंजाब विश्वविद्यालय से एम.ए. किया और फिर विदेश चले गए। लंदन के एक विश्वविद्यालय से उन्होंने पी.एच.डी. तथा हॉलैण्ड के यूट्रैक्ट विश्वविद्यालय में उन्होंने डी.लिट् किया। उन्होंने मध्य- पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति और साहित्य का विशेष अध्ययन किया था। वे कितनी ही योरोपियन, एशियायी और भारतीय भाषाएं जानते थे। वे अपने सांस्कृतिक अध्ययन को सुनियोजित ढंग से चलाने के लिए उन्होंने 1934 ई. में भारतीय संस्कृति की अंतर्राष्ट्रीय एकादमी नामक संस्था स्थापित की। जो अब दिल्ली में काम कर रही है। डॉ. रघुवीर ने चीन, जापान, थाईदेश , मंगोलिया, जावा, बाली कम्बोज आदि कितने ही देशों का भ्रमण किया था । वहां जाने का उनका उद्देश्य भारतीय संस्कृति के अवशिष्ट चिन्हों तथा साहित्य का अनुसंधान था। उन्होंने अपनी एकादमी में इन यात्राओं में प्राप्त अनेक ग्रंथों और वस्तुओं का बड़ा महत्वपूर्ण संग्रह बना लिया था। एशिया में भारतीय संस्कृति के प्रसार के वे सर्वमान्य और प्रतिष्ठित विद्वान माने जाते थे। इस विषय पर उन्होंने कितनी ही पुस्तकें भी लिखी। इनमें चीनी भाषा की रामायण का अंग्रेजी अनुवाद तथा एक चीनी पुस्तक का अनुवाद जिसमें भारतीय व भौगोलिक परिभाषाओं का संकलन है, विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। उन्होंने कई वेदों के भी सुसंपादित संस्करण निकाले। सब मिलाकर उन्होंने 88 ग्रंथों की रचना की, जिसमें कई अनुवाद तथा कोष भी है।

डॉ. रघुवीर हिन्दी के अनन्य उपासक थे। मध्यप्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री स्वर्गीय पं. रविशंकर शुक्ल उनकी विद्वता और हिंदी निष्ठा से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इन्हें नागपुर बुलाकर विश्वविद्यालय की बी.ए.सी. कक्षाओं के लिए हिंदी और मराठी में विविध ज्ञान और विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों को तैयार करने का काम सौंपा । उन्होंने नागपुर विश्वविद्यालय में शिक्षा का माध्यम हिंदी और मराठी को कर दिया था। डॉ. रघुवीर केवल विद्वान ही नहीं थे, उनमें उच्च श्रेणी की संगठन- योग्यता भी थी। उन्होने थोड़े ही समय में विविध विषयों पर विश्वविद्यालय के स्तर की प्राय: दो दर्जन पाठ्य पुस्तकें हिंदी और मराठी में तैयार कर दी। जब मध्य प्रदेश में हिंदी राजभाषा घोषित हुई, तब प्रशासनिक शब्दों के लिए हिंदी भारत की राजभाषा घोषित हो चुकी थी। किंतु दिल्ली के प्रभुगण पारिभाषिक कोषों की तैयारी में ढील कर रहे थे। तब डाक्टर रघुवीर ने एक वृहद कोष तैयार किया, जिसमें न केवल प्रशानिक अपितु ज्ञान और विज्ञान

के सभी आवश्यक शब्द रखें गये है। यह वृहद कोश डा. रघुवीर की कीर्ति का चिरस्थायी स्मारक है। जिस प्रकार योरोपियन भाषाओं के वैज्ञानिक परिभाषित शब्द लेटिन और ग्रीक के आधार पर बनाये गये हैं, उसी प्रकार डा. रघुवीर ने विशाल कोष के शब्दों को संस्कृत के आधार पर बनाया। शब्दों का चयन उन्होंने वैज्ञानिक ढंग से किया । संस्कृत मूलक होने के कारण तथा प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में व्यवहृत पारिभाषिक शब्दों कों लेने के कारण अंग्रेजी और उर्दू जानने वाले लोगों ने इस महान कृति का मजाक उड़ाया और इसका विरोध किया। किंतु लाखों रूपया खर्च करके और आठ-दस वर्षो तक काम करने के बाद जब भारत-सरकार ने अपना कोष तैयार करवाया तब मालूम हुआ कि उन दोनों कोषों में डॉ. रघुवीर के कोषों का काफी उपयोग किया गया है। वास्तव में सुस्पष्ट तथ्य यह है कि यदि ज्ञान-विज्ञान का ऐसा पारिभाषिक कोष बनाना हो तो भारत की अधिकांश भाषाओं को ग्राह्य हो और जिससे हिंदी का गौरव बढे तो कोष निर्माण के जो आधारभूत सिद्धांत डॉ. रघुवीर ने सामने रखें , उन्हें छोड़कर अन्य कोई मार्ग नहीं है। अपेक्षाकृत अल्पावधि में इतना बड़ा और ऐसा प्रामाणिक कोष बनाकर डॉ. रघुवीर ने अपनी विद्वता और कर्मठता का मूर्त प्रमाण दिया। वे ऐसी कृति बना गए है, जो भावी कोषों का मुख्य आधार होगा। इस कोष को बनाकर उन्होंने हिंदी की अभूतपूर्व सेवा की। इसी एक कृति से हिंदी भाषा और साहित्य के इतिहास में उनकी कृति अमर रहेगी।

किन्तु अन्य विद्वानों और साहित्यिकों की तरह वे न तो किताबी कीड़े थे और न परमुखापेक्षी ही। वे हिन्दी के अनन्य भक्त थे। उनका विश्वास था कि देश का वास्तविक कल्याण तभी होगा। जब हिन्दी भारत की राजभाषा ही नहीं, राष्ट्रभाषा भी हो जाएगी। वे हिन्दी को राजभाषा बनाए जाने को बड़ा महत्व देते थे। उनके लिये भारतीय संस्कृति और हिन्दी का समन्वित नाम धर्म था, और उनके लिये वे सब कुछ त्याग करने को तैयार थे। जब संसद में 1965 के बाद भी अंग्रेजी को राजभाषा के रूप में चलाते रहने का विधेयक लाया गया तो उन्होंने अन्य हिन्दी साहित्यिकों की तरह अपने पुस्तकालय की सुरक्षा में अपने को बंद नहीं कर लिया। उन्होंने डॉ. लोहिया के साथ हिन्दी जनता की भावनाओं को व्यक्त करने के लिये संसद के सामने विशाल जनसमूह के प्रदर्शन का नेतृत्व किया। हिन्दी की रक्षा के लिये वे उसके गाढ़े समय में सामने आये और यह आशा की जाती थी कि भविष्य में हिन्दी का नेतृत्व उन्हीं के कुशल हाथों में

रहेगा। डॉ. रघुवीर ने अपने दम पर ही भाषा स्वराज्य का वातावरण बना दिया था। उन्होंने 11 अगस्त 1962 को अपने प्रेरक उद्‌बोधन में कहा था- भारत की जनता की कोई भी भाषा हो, हिन्दी हो, बंगला हो, तमिल हो या अन्य कोई भारतीय भाषा, हमें अंग्रेजी के विरुद्ध सामूहिक रूप से युद्ध भेरी बंजानी है। हमारी भाषाएं ही हमारे देश में चलेंगी। अंग्रेजी अंग्रेजों के देश में फले-फूले किन्तु इसको हम अपने देश में राज न करने देंगे, यह हमारी प्रतिज्ञा है। हमारी संख्या 98 प्रतिशत है। हम इस युद्ध में जीतेंगे और अवश्य जीतेंगे।

उन्हीं के आह्वान पर 1965 के बाद अंग्रेजी चालू रखने के विरोध में एक मंच तैयार हुआ और हिन्दी भाषा आंदोलन को नवीन गति एवं दिशा मिली।

वे उत्कृष्ट देशभक्त थे, स्वाभिमानी थे, अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति उनमें लगाव था, निष्ठा थी। वे उसको सर्वोपरि देखना चाहते थे। कहते हैं एक दिन वह पढ़ रहे थे, रेट माने चूहा, केट माने बिल्ली किंतु पैंसिल पर आकर रुक गए तो उन्होंने सोचा कि पैंसिल का अर्थ पैंसिल क्यों ? क्या हमारी भाषा में इसका कोई पर्याय नहीं हो सकता। बस यही ''क्या'' द्युतिमान हो उठा। भाषाओं पर भाषाएं, उनका व्याकरण, उनके शब्दों की व्युत्पत्ति, उस मनस्वी की मेधा में एकदम आलोकित हो उठा। झंझावत आये किंतु वे रुके नहीं, निरंतर आगे बढ़ते गए और आज हिन्दी भाषा विज्ञान, साहित्य, कला, संस्कृति आदि के अध्ययन, अध्यापन का जो सशक्त माध्यम बन सकी है, उसका बहुत कुछ श्रेय डॉ. रघुवीर को है। डॉ. रघुवीर की प्रेरणा का ही परिणाम था कि उनके पुत्र मोतीचन्द्र ने सरस्वती विहार जैसी संस्था की स्थापना की। अपने पिता के ठीक अनुरूप उन्होंने बिना किसी राजकीय प्रलोभन के चीन, मंगोल, सिंहल, सुवर्णभ्र श्याम, कम्बोज, चम्पा आदि देशों में जाकर भारतीय साहित्य की अमूल्य पांडुलिपियों का संग्रह किया। पाणिनी के नये अनुवाद की चर्चा रद्द की और संस्कृत ग्रंथों के विभिन्न भाषाओं में हजारों खण्ड के अनुवाद की योजना तैयार की। आज भारतीय भाषाओं को समृद्ध बनाने वाले विशालकाय शब्दकोषों के निर्माण एवं प्रकाशन का कार्य इसी संस्था के माध्यम से चल रहा है। ज्ञान और विज्ञान की विविध शाखाओं के अध्ययन से भाषा एवं शब्दावली निर्माण का जो महत कार्य इस प्रतिष्ठान के माध्यम से हुआ है, वह सचमुच विस्मयकारी एवं इतिहास में अभूतपूर्व है। प्राय: यह आरोप लगाया जाता था कि हिन्दी आधुनिक विज्ञान की शिक्षा देने में सक्षम नहीं है। डॉ. रघुवीर ने हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी माध्यम

से रसायन शास्त्र के अध्यापन का सफल प्रयोग करके स्वयं इसका उत्तर दिया था। उन्होंने सप्रमाण इस तथ्य को प्रतिपादित किया कि भारतीय भाषाएं विज्ञान के क्षेत्र में विश्व की किसी भी भाषा से अधिक सरल और सुगम है। यह उन्हीं के अंथक प्रयत्नों का परिणाम है कि आज अनेक विश्वविद्यालयों ने विज्ञान के अध्ययन-अध्यापन और भारतीय लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं के माध्यम हिन्दी हो चुकी है।

डॉ. रघुवीर अत्यंत दूरदर्शी थे, उनकी राष्ट्रीय निष्ठा अपूर्व थी। जब वे चीन गए तो उन्होंने वहां की स्थिति को सही ढंग से भांपा और भारत लौटकर उन्होंने चीन की आणविक शक्ति एवं सामरिक क्षमता की ओर देश का ध्यान आकृष्ट किया। उन्हें लगा कि चीन की नियत अच्छी नहीं है। देश की उत्तरी सीमाओं पर आसीन खतरे को भांप उन्होंने नेहरू जी को रक्षा तैयारियों में ढील न बरतने के लिये सचेत किया। किन्तु हिन्दी-चीनी भाई-भाई नारे में उनकी आवाज को किसी न सुना, जिसका मुआवजा 1962 के युद्ध में देश को भुगतना पड़ा। उनमें अपार ऊर्जा थी। गहन-अध्ययन, शोध, पुस्तक-प्रणयन के साथ-साथ वे राजनीति में भी सक्रिय भाग लेते थे। उनकी योग्यता और निष्ठा से प्रभावित होकर स्व. पंडित रविशंकर शुक्ल ने उन्हें मध्य प्रदेश की ओर से संविधान सभा में भिजवा दिया था। बाद में वे मध्य प्रदेश की ओर से राज्यसभा के सदस्य भी रहे किन्तु सरकार की चीन संबंधी नीति से क्षुब्ध होकर उन्होंने कांग्रेस से त्याग-पत्र दे दिया और वे जनसंघ में शामिल हो गए थे। जनसंघ के अध्यक्ष रूप में उन्होंने पार्टी में नये प्राण फूंक दिए थे।

डॉ. रघुवीर का निधन 1963 में हो गया। वे डॉ. राम मनोहर लोहिया के चुनाव में उनका समर्थन करने के लिये जीप से फरूखाबाद जा रहे थे कि अकस्मात कानपुर से कुछ दूरी पर उनकी जीप में खराबी आ गई तथा वह एक पेड़ से टकरा गई जिससे उनका देहावसान हो गया। उस समय उनकी अवस्था मात्र 61 वर्ष की थी। डॉ. रघुवीर के निधन से अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का एक महान् विद्वान उठ गया। सार्वजनिक जीवन का एक त्यागी, योग्य और सिद्धान्तों पर दृढ़ रहने वाला देशभक्त नेता चला गया, किंतु सबसे अधिक हानि हिन्दी की हुई। ऐसा कर्मठ विद्वान और सूझबूझ का दूसरा नेता हिन्दी को शीघ्र शायद ही मिले। अग्रवाल समाज ऐसी विभूति को जन्म देकर निश्चय ही गौरव का अधिकारी है।

सं. दिनेश गुप्त

जयपुर केन्द्रीय कारागृह के प्रथम अग्रवाल अधीक्षक

श्री नौरंगराय खेतान

जिन्होंने जेलों को खुला दर्शनीय स्थल बना दिया

जो सबसे आगे रहे वह होता है- अग्रवाल और अग्रवालों ने प्रत्येक क्षेत्र में अपनी प्रतिभा प्रकट कर इस सत्य को पुष्ट और प्रमाणित किया है। वैसे तो अग्रवालों का मुख्य क्षेत्र उद्योग एवं व्यवसाय रहा है और उन्होंने जीवन के अन्य क्षेत्रों जैसे कला, संस्कृति, अभियांत्रिकी, चिकित्सा, विज्ञान आदि विविध क्षेत्रों में भी अपनी प्रतिभा को प्रकट किया है किंतु हम यहां एक ऐसे अग्रवाल बन्धु का परिचय देने जा रहे हैं, जिन्होंने पुलिस के विभिन्न उच्च पदों पर रहते हुए न केवल अनगिनत प्रशंसा पत्र, पदक एवं मानद उपाधियां पाईं, अपितु अपने अद्भुत बुद्धिकौशल एवं मानवीयतापूर्ण सद्व्यवहार से बंदियों का हृदय जीत जेलों को खुले रमणीक दर्शनीय स्थल में परिवर्तित करने में अनुपम सफलता प्राप्त कर पुलिस-इतिहास में एक नया अनुकरणीय आदर्श और प्रतिमान भी स्थापित किया है।

अग्रवाल समाज के ये गौरव थे, श्री नौरंगराय खेतान। आपका जन्म 27 जुलाई 1854 को रामगढ़ शेखावटी में सुप्रसिद्ध खेतान परिवार में हुआ। आप मारवाड़ी समाज के पहले व्यक्ति थे, जो सन् 1880 के लगभग ब्रिटिश सरकार की सेवा में प्रविष्ट हुए और अपने अद्भुत कृतित्व से ब्रिटिश जेलों के इतिहास में उल्लेखनीय महत्वपूर्ण स्थान बना गए। सेना के विभिन्न उच्च पदों पर रहकर अग्रवालों द्वारा कीर्तिमान स्थान प्राप्त करने के तो असंख्य उदाहरण मिलते हैं। अपनी ही जाति के एक अत्यंत उत्साही उदीयमान युवक श्री कमलकिशोर बंसल ने भारतीय सेना के इतिहास से ऐसे अनेक अग्रबंधुओं के शौर्यपूर्ण कार्यों को खोज निकालने में सफलता प्राप्त की है, जिन्होंने ब्रिटिश भारत एवं उसके अनन्तर स्वतंत्र भारत में अपने शौर्य और पराक्रम से सेना के इतिहास में गौरवपूर्ण स्वर्णिम

पृष्ट अंकित किए और अनेक उच्च पदक एवं सम्मान प्राप्त कर अग्रवाल समुदाय के गौरव में चार चांद लगाये किंतु पुलिस की जेलों के अधीक्षक पद पर रहकर बंदियों के बीच जीवन बिताने और उन्हें आदर्श मानवीय जीवन की प्रेरणा देने वाले उदाहरण संभवत: एकमात्र श्री नौरंगराय खेतान ही हैं।

श्री नौरंगराय खेतान सब जेल, डिप्टी जेलर, जेलों के डिप्टी सुपरिटेडेंट पदों से निरंतर उन्नत होते हुए अन्तत: जयपुर राज्य की सेंट्रल जेल के सुपरिटेंडेंट पद पर पहुंचने में किस प्रकार सफल हुए यह एक व्यक्ति के साहस और प्रेरणा की प्रेरक कहानी है। वे 1873 में पुरलिया जेल में एक सामान्य पद पर नियुक्त हुए। 5 वर्ष बाद वे मिनापुर सेंट्रल जेल में डिप्टी जेलर तथा उसके एक वर्ष बाद ही रांची जिला जेल के जेलर बना भेज दिए गए। कटक में भी वे एक वर्ष जेलर के पद पर रहे।

1879 में रांची में खुले मैदान में लोहार दग्गा जेल नाम से एक जेल स्थापित हुए थी। खुले मैदान में कैदियों पर नियंत्रण एक असंभव सी कल्पना लगती थी किंतु आपने यह चमत्कार कर दिखाया। 1886 में आपको मिदनापुर जेल का अधिकारी बनाया गया। वहां आप चार वर्ष रहे 19 जनवरी 1890 को आपका स्थानांतरण बक्सर जेल में हो गया।

इन 16 वर्षों की कार्यावधि में श्री खेतान ने जेलों के इतिहास में भारतीय होने के नाते अनेक नवीन अध्यायों की रचना की। आपको अपने सद्व्यवहार एवं बुद्धिकौशल से इस तथ्य को स्थापित करने में सफलता प्राप्त की कि जेलों के बंदी अपराधी मानवोचित व्यवहार पर जेल की चारदीवारी अथवा खुले मैदान में भी सभ्य व्यक्तियों जैसा आचरण कर सकते हैं। पुरलिया के जनजीवन में यह प्रयोग कम महत्व का न था। पूरे समाज में यह चर्चा का विषय रहा कि एक बाणिये का बेटा जेल में कैदियों की संभाल करता है और उनके बीच रहकर वह बहुत अच्छा कार्य कर रहा है। ब्रिटिश जेलों के कठोर नियंत्रण के होते हुए भी श्री खेतान ने जेल बंदियों को जो भ्राता, पिता सा स्नेह और ममता प्रदान की, उसने बंदियों को भी सदाचारी जीवन जीने के लिये बाध्य कर दिया।

1891 में नौरंगराय जी बक्सर में जेलर पद पर आए। उन्होंने वहां जिस क्षमता के साथ कार्य किया, उसके कारण उन्हें जेल विभाग में सबसे योग्य एवं चुस्त अधिकारी के रूप में मान्यता मिली और आपका उत्तम प्रबन्ध चातुर्य देख दो वर्ष बाद ही 1892 में आपको बक्सर की सेंट्रल जेल का डिप्टी सुपरिटेंडेंट

बना दिया गया। आपका इस पद पर आसीन होना एक आश्चर्य का विषय समझा गया क्योंकि इससे पूर्व अंग्रेजों को यह विश्वास ही नहीं होता था कि कोई भारतीय भी इस पद पर बैठने का अधिकारी हो सकता है।

बक्सर जेल की स्थिति अत्यंत खराब थी, प्रबंध दोषपूर्ण था किंतु आपने पद पर आसीन होते ही उसे सुधारने की भरसक चेष्टा की। कैदियों के रहने और भोजन के लिये उचित व्यवस्था की। कैदियों को नियमित रूप से कवायद (व्यायाम) कराना प्रारंभ किया, जिससे उनके स्वास्थ्य में सुधार हो। बक्सर की जेल में उनके प्रयत्नों से एक सुंदर बगीचा भी लहलहाने लगा। कैदियों में विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन कर उनके व्यक्तित्व विकास का एक नया क्रम प्रारंभ हुआ।

इससे अंग्रेज अधिकारियों पर उनका दबदबा एवं धाक जमने लगी। उनकी इस अद्भुत कार्यक्षमता की प्रशंसा करते हुए सेंट्रल जेल के सुपरिटेंडेंट मिस्टर डब्लयू. ए.सी. वीडन ने लिखा- नौरंग मारवाड़ी से जो भी ड्यूटी लेने की अपेक्षा की जाती है, वे उसे सफलता की चरम सीमा तक पहुंचाने में अपनी पूरी क्षमता लगा देते हैं और पूर्ण योग्यता व क्षमता प्रदर्शित करते हैं। श्री खेतान ने अपने अथक परिश्रम से ही यह सिद्ध कर दिखाया कि अब तक जिन पदों पर केवल अंग्रेजों को ही बिठाने का अधिकारी समझा जाता रहा है, उन पर एक भारतीय भी योग्यता का प्रदर्शन कर सकता है, यह उपलब्धि कोई कम बात नहीं थी। बक्सर जेल की फैक्टरी विभाग ने इस अवधि में आश्चर्यजनक लाभ कमाया। उनके प्रयत्नों से जेल में उत्पादित वस्तुओं की बिक्री 50 हजार से बढ़कर एक लाख हो गई। प्राय: भारत आने वाले ब्रिटिश साम्राज्य के सभी अतिथि बक्सर जेल का निरीक्षण करने आते, विदेशी पर्यटक अधिकारियों का दौरा भी बक्सर होता रहता। इन्हीं विशेषताओं को देखते हुए कर्नल कौमिन्स ने उन्हें राय बहादुर की उपाधि से सम्मानित करने की अनुशंसा की। अनेक वर्षों तक ब्रिटिश जेलों में विभिन्न पदों पर सेवा करते हुए अन्तत: उन्होंने 1906 में उससे अवकाश ले लिया।

अवकाश प्राप्ति के तत्काल बाद वे नवम्बर 1906 में जयपुर जेल के सुपरिटेंडेंट बना दिए गए। इससे पहले इस पद पर वहां अंग्रेज अधिकारी ही नियुक्त होते रहे थे। किसी भारतीय के लिये इस पद की प्राप्ति गौरव का विषय थी। श्री नौरंगराय जी ने यहां भी अपने कार्यकौशल से कैदियों का दिल जीतने में

सफलता प्राप्त की। भारत सरकार ने उस समय प्राय: यह नियम सा बना लिया था कि जब भी कोई बहुत प्रतिष्ठित अंग्रेज या भारतीय कैद होता तो उसे जयपुर जेल में ही भिजवाया जाता है। जयपुर राज्य के महाराजा ने आपको खूब मान-सम्मान, रहने के लिये कोठी और सब प्रकार की सुख-सुविधाएं प्रदान कीं।

आपने जयपुर जेल में आश्चर्यजनक सुधार किये। भोजन, वस्त्र से लेकर कला-कौशल तक समस्त प्रबंध अपने हाथ में ले लिया। जो जेल बंदियों के निरंतर झगड़ों से कलह का केन्द्र बनी थी, आपके सद्व्यवहार से उत्तम सदाचारी जीवन के अभिलाषी व्यक्तियों का केन्द्र बन गई। आपने जेल को वस्त्र बुनने, खड्डी और जयपुरी गलीचे बनाने के शानदार केन्द्र में परिवर्तित कर दिया। फलत: जयपुर जेल घाटे के स्थान पर सरकार के लिये आय स्त्रोत बन गई। जहां पहले उसकी नाममात्र आय 6677 रुपये थी, वहीं बढ़कर 108269 रुपये हो गई। अब सारी जेल में हरियाली थी, फल-फूलों के बगीचे थे और कैदी के स्थान पर उत्तम कोटि के शिल्पी थे, जिनमें जेल से मुक्त होने पर स्वावलम्बी जीवन जीने का उत्साह और विश्वास था। श्री खेतान जी स्वयं गीता विष्णु सहस्त्रनाम का पाठ तो करते ही थे, कैदियों को भी कराने लगे। इससे उनमें नित्य प्रार्थना करने का एक रोग लग गया।

जयपुर राज्य ने उन्हें इस सेवा के उपलक्ष में 1913 में सेठ शब्द की उपाधि प्रदान की। इससे पूर्व उन्हें रायबहादुरी का खिताब मिल चुका था। इससे पहले राज्य के अधिकारी तुम शब्द से सम्बोधित किए जाते थे किंतु आपके लिये विशेष रूप से राज शब्द प्रयोग करने की आज्ञा दी गई। कौंसिल के बैठने के समय आपको विशेष रूप से निमंत्रित किया जाता।

उनके समय में जयपुर की सेंट्रल जेल एक आदर्श जेल बन गई। जयपुर यों ही पर्यटकों के लिये आकर्षण का केन्द्र है किंतु विदेशी पर्यटकों के लिये जयपुर जेल को देखना एक अनिवार्यता सी बन गई। यह अनोखी बात थी। विदेशी लोग जब भी जेल देखकर जाते तो उन्हें अनुभव होता कि अमेरिका, यूरोप आदि की जेलों के लिये जेल कहीं अनुकरणीय है।

2 दिसम्बर 1914 को नोबल पुरस्कार विजेता श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर जयपुर पधारे तो आपने जयपुर जेल की भी निरीक्षण यात्रा की और आपने अपनी सम्मति देते हुए लिखा कि यह जेल एक आदर्श नमूना है, जिसकी एक कल्पना ही की जा सकती है। (I have been greatly impressed with

whatever I have seen in the Jail. It seems to me quite a model of what this kind of things should be)

श्री विनोबा भावे जब 1918 में जयपुर पधारे तो आपके बंगले में ही अतिथि बन कर ठहरे। 1922 में 68 वर्ष की अवस्था में आपने अपने जीवन की एक गौरवपूर्ण गाथा पूर्ण करते हुए इस पद से अवकाश ग्रहण कर लिया। आपकी प्रतिष्ठा एवं सामाजिक सेवाओं को देखते हुए अखिल भारतीय मारवाड़ी अग्रवाल महासभा के तृतीय कलकत्ता अधिवेशन में आपको उच्च सभापति के पद पर मनोनीत किया गया। उस समय उन्होंने अध्यक्षीय पद से जो बातें कही, वे आज भी उतनी ही प्रेरक एवं महत्वपूर्ण हें। हम केवल उसके दो अंशों को देकर ही इस लेख का समापन करना चाहेंगे। उन्होंने कहा :-

हमारा जीवन अपने या अपनी जाति के लिये नहीं, बल्कि सारे देश के लिये उपयोगी होना चाहिये। साधारण पुरुष और स्त्रियां अपनी या संसार की दशा पर न समालोचना और न उनके विषय में कुछ विचार ही करती है। जन्म से वे एक ऐसी सामाजिक लकीर पर चलते हैं कि जो कुछ मिल जाता हैं, उसी में संतुष्ट रहते हैं। भविष्य की कुछ चिंता नहीं करते किंतु कुछ ऐसे महत्वाकांक्षी मनुष्य होते हैं जो समाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त करने वाली विचार शक्ति तथा संकल्प शक्ति से काम लेते हैं वह पहले आचार और विचार से समाज का एक ऐसा संगठन करना चाहते हैं जिससे जीवन का दैन्य दूर हो और उसमें वर्तमान आनंद की उपरोक्त बुराइयों का क्रमश: ह्रास हो। हमें इन्हीं दुर्लभ और अनोखे मनुष्यों की श्रेणी में जाने का बल करना चाहिए, तभी हमारा जीवन गौरवान्वित और आनन्दमय होगा।

विशेष रूप से अपने समाज की जिस राजनीति स्थिति की ओर समाज के बन्धुओं का ध्यान आकर्षित किया, वह आज भी मननीय है। काश हमें इस महान विभूति ने आज से 70 वर्ष पहले जो उद्बोधन दिया था, उस पर व्यवहारिक रूप से आचरण एवं ध्यान दिया होता जो हमें आज उस सम्मेलन बुलाने की आवश्यकता ही नहीं होती, जिसे हमारे बंधु बड़ी तीव्रता से अनुभव कर रहे हैं। आपने कहा :- हमारे समाज की राजनीतिक स्थिति बड़ी विषम और जटिल है। आरंभ में हम राजपूताना से बाहर निकले थे, पर हमारा व्यवसाय इस प्रकार का है कि हम प्रत्येक नगर और ग्राम में फैल गये हैं किंतु हमारी स्थिति सर्वत्र अल्पसंख्यकों की सी है। यह दुख की बात है और दुर्भाग्यवश सत्य है कि जिन

प्रांतों में अन्य लोगों की संख्या अधिक है, वहां हमें केवल घृणा की दृष्टि से ही नहीं देखा जाता अपितु सरकार भी वहां बहुमत के परितोष के लिये हमारी अवहेलना करती है और हमारे मार्ग को अवरूद्ध करने की चेष्टा की जाती है। हमारे स्वत्व पददलित किए गए हैं और साधारण से साधारण अधिकारों से भी हम वंचित किए गए हैं। हां, यदि हम याद किए गए हैं तो उस समय जब रूपयों की आवश्यकता पड़ती है। पर वहां भी द्रव्यदान से जो लाभ और सुभीते हो सकते थे, वे हमें न दिए जाकर दूसरों को दिये गये। इस देश के अन्य समाजों की उन्नति एवं अभ्युदय से मुझे कोई ईर्ष्या नहीं। मेरा अभिप्राय केवल यही है कि जब अधिकारों और स्वत्वों के सुख भोग और कष्टों तथा अभावों को दूर करने का समय आवे, तब ऐसा न हो कि हमारी कोई खोज खबर लेने वाला न रहे तथा हम अपने वास्तविक स्वत्वों (अधिकारों) से भी वंचित रह जायें।

इसके लिए जी जान से चेष्टा करनी होगी। भारतवर्ष की अवस्था में इस समय जो गहरा परिवर्तन हो रहा है, तन-मन-मन से पूर्ण कोशिश करनी होगी। बहुत बातों में हमें एक होकर रहना पड़ेगा। अपने पैरों पर खड़ा होना होगा।

शक्तिशाली से ही सब प्रेम करते हैं, इसलिए वर्तमान राजनीति के दौर में अपना विशिष्ट अस्तित्व बनाना होगा। यदि यह अवसर हमारे हाथ से निकल गया और हम उचित अधिकारों को प्राप्त करने से वंचित रहें तो हमें सदा के लिये गुलामी भोगनी पड़ेगी। यदि हमें राजनीतिक अधिकार न मिलेंगे, हमें विधान सभाओं कौर कानून निर्मात्री सभाओं में अपनी बात समझाने का हक न मिलेगा तो हमारे हाथ से धीरे-धीरे सारी व्यवस्था निकल जाएगी और बाकी क्या रहेगा। यदि समाज के हम सभी लोग सब स्थानों पर प्रतिनिधि रूप में रहेंगे तो अन्य समाजों से वैमनस्य होने का कोई डर न रहेगा, बल्कि आपस के प्रेमभाव में वृद्धि ही होगी क्योंकि शक्तिशाली से सब प्रेम करते हैं। अत: अपने समाज के सभी बन्धुओं को राजनीति में न केवल योग देना चाहिये अपितु संपूर्ण भेदभावों और मतभेदों को भुलाते हुए एकजुटता का प्रदर्शन करना चाहिए।

आज संपूर्ण जातीय बन्धुओं के लिये ये शब्द मननीय ही नहीं, अपने व्यवहार में परिणित किए जाने योग्य भी हैं। इनमें हमारे भविष्य के जीवन की सुख-सृद्धि छिपी है।

डॉ. चम्पालाल गुप्त

काका हाथरसी

काका हाथरसी विश्व हास्य सम्राट ही नहीं, अग्र समाज के गौरव थे जिन्होंने अपनी हास्य प्रतिभा द्वारा देश-विदेश में महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था। सम्पूर्ण भारत और विश्व में अपनी हंसी की खिलखिलाहट बिखेरने वाले इस महान कवि का वास्तविक नाम भी संभवत: अनेक व्यक्तियों के लिये अजूबा ही हो। शायद अग्रवालों में भी अधिकांश नहीं जानते हैं कि वे अग्र समाज के थे। काका हाथरसी बचपन में उनका नाम प्रभुलाल गर्ग था इनके पिता का देहांत बचपन में ही हो गया था। जीवन व्यतीत करने का अन्य साधन उपलब्ध ना होने पर इनकी 20 वर्षीय माता ने ननिहाल की शरण ली। किन्तु माता का हृदय मन ही मन कसमसाने लगा। उसने पुन: अपने घर की सुध ली। मामा ने घर चलाने के लिये आठ रुपये माहवार बांध दिया। उसी से रोटियां बनाकर गुजारा किया जाता था। घी, दूध, दही के दर्शन दुर्लभ थे।

काका का व्यक्तित्व ऐसे कर्मठ लग्न के धनी और मेहनती व्यक्तियों का आदर्श प्रस्तुत करता है, जो विपरीत परिस्थितियों में भी निरंतर अपना पद खोजते हुए सफल्ता के शिखर पर आरूढ़ हो जाते हैं। आर्थिक अभाव के कारण 10 वर्ष की उम्र तक उनकी शिक्षा का कोई प्रबंध नहीं हो सका था। 16 वर्ष की अवस्था में ये एक आढ़त की दुकान पर 6 रुपये प्रतिमाह टक पट्टी लिखने काम करने लगे। प्रात: 7 बजे से लेकर देर रात्रि तक कार्य करते। उनकी ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, मेहनत व लग्न के कारण कुछ माह उपरांत ही इनका वेतन 25 रुपये प्रतिमाह हो गया जिससे इनके परिवार में कुछ स्थायित्व आ गया। 1926 में 21 वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हो गया। किन्तु काका को अभी अनेक कठिनाइयों से गुजरना था। 1928 में किन्हीं कारणों से इनकी नौकरी छूट गई जिससे पारिवारिक

स्थिति काफी विकट हो गई।

काका मस्त प्रकृति के आदमी थे। नौकरी छूटने पर नदी के किनारे बांसुरी बजाया करते थे। संयोगवश उनका संपर्क पं. नंदलाल शर्मा से हुआ। वे हारमोनियम और तबले के मास्टर थे। दोनों ने सलाह मशवरा करके एक पुस्तक लिखी। पुस्तक को काफी लोकप्रियता मिली। इसके साथ ही काका की स्थिति में परिवर्तना होना शुरू हुआ। संगीत कार्यालय हाथरस की स्थापना की गई। बाद में संगीत की लगभग 150 उत्कृष्ट पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। काफी कम व्यक्ति यह जानते होंगे कि संगीत कार्यालय के संस्थापक और 60 वर्ष से निरंतर प्रकाशित होने वाले पत्र संगीत के सम्पादक प्रभुलाल गर्ग ही थे।

काका की प्रथम कविता 1933 में गुलदस्ता मासिक पत्र के आवरण पृष्ठ पर प्रकाशित हुई। उस समय काका काका नहीं बने थे और न ही उनके दाढ़ी थी। उस समय के लोगों में कविता सुनने के प्रति उतनी उत्सुकता नहीं थी। जितनी काका को कविता सुनाने की थी। काका को वर्तमान लोकप्रियता को प्राप्त करने के लिये जीवन में अनेक प्रकार के संघर्ष का सामना करना पड़ा था। प्रारंभ में व्यंग्य रचना करने पर उन्हें न जाने कितना अपमान सहना पड़ा था। इसी संदर्भ में एक रोचक घटना निम्न प्रकार से है:

काका एक बार बारात में गये। वहां खाना ऐसा था कि गले से ना उतरे। सभी परेशान, किन्तु कोई कुछ कह ना सके। अंत में इसका भार काका पर डाला गया। निर्धारित योजनानुसार भोजन से पूर्व एक कविता सुनाने का आग्रह काका से किया गया। काका ने अपने मधुर कण्ठ से भोजन की प्रशंसा करते हुए कविता पढ़ना शुरू किया :-

खट्टा-खट्टा रायता, मिर्च दीनी झोंक,
आंखों से आंसू बहे, लगा नाक में छौंक।
लगा नाक में छौंक, बाराती भूखे भड़ूआ,
तोड़े किन्तु न टूट सके, दांतों से लड़ूआ।
कहे काका कविराय, सुनो री चन्दो चच्ची,
पूड़ी चकला छाप, कचौड़ी भी कच्ची॥

काका ने यह कविता मजाक में कही थी किन्तु संयोगवश भोजन तैयार करने वाली महिलाओं में एक का नाम चन्दो निकल आया। बस फिर क्या था? उसके पति देवता और अन्य लोगों की भोंए चढ़ गईं। काका आगे कहें, इससे

पहले आवाज आई : औरत पे आक्षेप कियौ जा रयो है, जै हमारी बेइज्जती है, मारौ सारैन कूं। तभी एक बड़ी मूंछों वाले नम्बरदार ने कहा : निकाल रा र छोरा। बन्दूक, कहा समझि रक्खी है सारैन नै। भीड़ में से आवाज आई : कहां है वह काके का बच्चा? परन्तु वे तो काका थे, कांका के बच्चे नहीं, इसलिए अपने एकमित्र के साथ चुपचाप वहां से गायब हो गये।

1954 में काका ने दाढ़ी रखना प्रारंभ किया। इससे उनकी लोकप्रियता और बढ़ गई। उनका काव्यमय व्यक्तित्व जैसा दाढ़ी पाकर अधिक निखर उठा और कवि सम्मेलनों में उनकी मांग खूब बढ़ गई।

काका ने दाढ़ी महिमा कविता में लिखा है :

काका दाढ़ी रखिये, बिन दाढ़ी मुख सून,
ज्यों मंसूरी के बिना, व्यर्थ देहरादून।
व्यर्थ देहरादून, इसी से नर की शोभा,
दाढ़ी से ही प्रगति कर गये, संत विनोबा।
मुनि वशिष्ट यदी दाढ़ी मुख पर नहीं रखते,
तो क्या वे भगवान राम के गुरू बन पाते।

1942-44 तक श्री प्रभुलाल को काफी लोकप्रियता प्राप्त हुई। उनका काक़ा सम्बोधन जनता के जिव्हा पर चढ़ने लगा। 1946 में क़ाका की कचहरी नाम से कविताओं का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। इसके बाद तो उनकी हास्य कृतियां एक के बाद एक निरंतर आने लगी। जिनमें पिल्ला, म्याऊं, दुलत्ती, काका के कारतूस, काकी की फूलझड़ियां, काका के धड़ाके, कहं काका कविराय, फिल्मी सरकार, जय बोलो बईमान की, काका कोला, हंसगुल्ले, काका के नाम कहकहे आदि प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। 1963 में काका के प्रहसन नाम से 8 प्रहसनों का संकलन प्रकाशित हुआ और अपनी हास्य-व्यांग्यात्मकता के कारण काका को अपूर्व ख्याति प्राप्त हुई।

काका हाथरसी को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति दिलाने में प्रसिद्ध नाटककार चिरंजीत और धर्मयुग पत्रिका के पूर्व सम्पादक धर्मवीर भारती का विशेष योगदान रहा। 15 अगस्त 1967 को उनके 31 हाजर तुकों के संग्रह तुक्तम् शरणम् गच्छामि का विमोचन तत्कालीन राज्यपाल श्री धर्मवीर द्वारा कलकत्ता में हुआ। काका ने समाज की विद्रूपताओं और साहित्यक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, अतिचार पर हास्य पूर्व शैली में वर्णन किया था। वे कवि

सम्मेलनों में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त कवि थे। वे लगभग 45 वर्षों तक काव्य मंचों पर छाए रहे।

आकाशवाणी, दूरदर्शन, पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कविताओं की मांग निरंतर बनी रही है। काका कवि सम्मेलनों में हंसाते ही नहीं थे वरन् हास्य उनके जीवन का अभिन्न अंग था। वे हंसने को ही जीवन मानते थे तथा उनके जीवन में यह सिद्धान्त प्रतिक्षण मूर्तिमान रहता था, घर में प्रवेश करते ही परिवार का हर सदस्य खिलखिलाता हुआ मिलेगा। यदि नहीं मिलेगा तो काका की निश्चल हंसी उसको हंसने के लिये मजबूर कर देगी। काका ने 1975 में काका हाथरसी हास्य पुरस्कार की स्थापना की और इसका पहला पुरस्कार हास्य और व्यंग्य कवि ओमप्रकाश आदित्य को मिला। इसमें 25 हजार रुपये की राशि दी जाती है। 5 हजार रुपये प्रति वर्ष के एक अन्य पुरस्कार की स्थापना भी आपने की।

काका हाथरसी एक अच्छे चित्रकार भी थे। उन्होंने करीब 150 तैलीय चित्र बनाये। इनमें अनेक चित्र शास्त्रीय संगीत के पुराने उस्तादों के हैं। संगीत लेखकों के लिये उन्होंने 1993 में 15 हजार रुपयों का पुरस्कार प्रांरभ किया। उनके कई रिकॉर्ड और कैसेट भी खूब लोकप्रिय हुए। वह पहले हिन्दी कवि थे जिनकी निजी काव्य गोष्ठियां कई बार थाइलैंड, इंग्लैंड, सिंगापुर, अमेरिका, कनाडा आदि देशों में हुई। बाल्दमोर अमेरिका के मेयर ने 1984 में उन्हें आनरेरी सिटीजनशिप देकर सम्मानित किया था। 1985 में उन्हें पद्मश्री से भी सम्मानित किया गया। वे कलारत्न की उपाधि से भी अलंकृत किए गए। उन्होंने हास्य-व्यंग्य के रचनात्मक साहित्य की 42 पुस्तकें लिखीं।

वे एक उच्चकोटि के बांसुरीवादक और संगीतज्ञ भी थे। गरीबी और अभावों में जीते हुए भी वे ठहाके लगाकर जीए। उन्होंने हाथरस में संगीत कार्यालय की 1930 में स्थापना की और संगीत मासिक पत्रिका का प्रकाशन 1935 में प्रारंभ किया जो आज भी संगीत की सबसे प्राचीन पत्रिका है और 60 वर्ष से निरंतर प्रकाशित हो रही है। काव्य के क्षेत्र में लगभग 150 ग्रंथों का प्रकाशन किया संगीत के क्षेत्र में उनकी म्यूजिक मास्टर, संगीतसागर, संगीत विशारद रचनाएं अत्यंत प्रसिद्ध हैं। उनकी कई पुस्तकों के तो बीसों संस्करण निकले। जिसका सौभाग्य भारत में बहुत कम कवियों को मिला है।

काका को उनकी साहित्य एवं संगीत-साधना में पर्याप्त सम्मान भी मिला। स्वतंत्रता दिवस पर लाल किले में आयोजित कवि सम्मेलन में वे 1957

से निरंतर भाग लेते रहे। हिज मास्टर वायस ने उनकी कविताओं के कई रिकॉर्ड उन्हीं के स्वर में अंकित किए। बम्बई की सिनोरिया एंड कम्पनी द्वारा उनकी कविताओं का एक कैसेट भी जारी किया गया। इसके अलावा कवि सम्मेलन फिल्म में भी उन्होंने अभिनय कर दर्शकों को हास्य रस से लोट-पोट किया। वे फिल्म ट्रस्ट ऑफ इण्डिया के मनोनीत अध्यक्ष रहे। उनकी कला साधना के उपलक्ष में उन्हें कलाश्री की उपाधि भी प्राप्त हुई। 15 अक्टूबर 1966 को उनकी षष्ठिपूर्ति के अवसर पर ब्रज कला केन्द्र हाथरस द्वारा उनके सम्मान में हीरक जयन्ती समारोह का भव्य आयोजन हुआ। 1967 में उनके सम्मान में एक भव्य अभिनंदन समारोह का आयोजन जिसमें आपको एक विशाल अभिनंदन ग्रंथ भेंट किया गया। कलकत्ता में बिड़ला भवन में आयोजित एक स्वागत समारोह में 108 साहित्यिक संस्थाओं ने माल्यार्पण कर आपके प्रति श्रद्धाभावना प्रकट की। इसी अवसर पर आपका तुक्तम् शरणम् गच्छामि ग्रंथ का विमोचन समारोह भी संपन्न हुआ। 1975 में नागपुर में आयोजित विश्व हिन्दी सम्मेलन ने भी आपको पर्याप्त लोकप्रियता प्रदान की। अनेक देशों ने उन्हें अपने यहां कवितापाठ के लिये आमंत्रित किया और 1974 में 22 दिन तक विदेशों में कविता पाठ कर पर्याप्त लोकप्रियता अर्जित की।

काका को अपने अग्रवाल होने पर गौरवानुभूति थी और महाराजा अग्रसेन के समान दाढ़ी रखने और गर्ग गोत्री होने के कारण वे अपने आपको महाराजा अग्रसेन का सच्चा वंशज कहते थे। अग्रोहा विकास ट्रस्ट द्वारा आपका अग्रोहा में शाल, श्रीफल आदि द्वारा भव्य अभिनंदन किया गया था और आपने शरद पूर्णिमा के अवसर पर आयोजित 1988 के अग्रोहा मेले में पधार कर तथा अपनी कविताओं द्वारा महाराजा अग्रसेन को श्रद्धांजली अर्पित कर लाखों अग्रजनों का दिल जीत लिया था। अपनी मातृभूमि अग्रोहा के दर्शन कर उन्हें जो अनिर्वचनीय आनंद की अनुभूति हुई, उसे उन्होंने समय-समय पर कविताओं एवं पत्रों द्वारा व्यक्त किया। उनमें एक सच्चे अग्रवाल की सभी विशेषताएं मौजूद थीं। उन्होंने अग्रवालों के गोत्रों आदि पर भी छंद रचना की।

18 सितम्बर 1995 को 89 वर्षीय काका हाथरसी का अपने गृहनगर हाथरस में करीब एक माह बीमार रहने के उपरान्त निधन हो गया। संयोग से आज ही काका का जन्मदिन भी था। मरने के लिये उन्होंने ऐसा दिन चुना कि उनके प्रशंसक भविष्य में उनका जन्मदिन और बरसी एक साथ मना सकें। हंसी

की फुलझड़ियां और ठहाकों के पटाखे बांटने वाला जन-जन का चहेता कवि अन्ततः आकाश में विलीन हो गया। वे हास्य कवि-सम्मेलनों के बेताज बादशाह थे। उनकी उपस्थिति किसी भी सम्मेलन को जीवंत और चिरस्मरणीय बनाने में समर्थ थी। उनका निधन जहां हिन्दी-साहित्य की अपूर्ण क्षति है वहीं देशभर को हास्यरस कवि की कमी सदैव खलती रहेगी। उनके परिवार में उनकी 84 वर्षीय पत्नी तथा पुत्र डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग हैं।

देश के राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा, प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंहराव, विभिन्न राज्यों के राज्यपाल तथा मुख्यमंत्रियों ने उनके निधन पर गहरा शोक व्यक्त किया। अनेक साहित्यकारों व कवियों ने भी दुख प्रकट किया। प्रधानमंत्री ने शोक संदेश में कहा कि पद्मश्री से सम्मानित काका हाथरसी ने अपने हास्य व्यंग्य से हिन्दी भाषा को कई दशकों तक समृद्ध किया और जनता के हृदय में स्थान बनाया। विपक्ष के नेता श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने दुख व्यक्त करते हुए कहा कि काका के निधन से शताब्दी का सर्वाधिक लोकप्रिय हास्य कवि हमारे बीच से उठ गया है। उन्होंने कहा कि काका ने हास्य, व्यंग्य के माध्यम से हिन्दी भाषा के प्रचार में योगदान दिया। काका हाथरसी के जीवनद्वीप के बुझने का अर्थ हंसी-खुशी की जगमगाती एक गली में अंधेरा हो जाने के समान है। मृत्यु से पूर्व उन्होंने सगे सम्बन्धियों से कह दिया था कि वे उनके मरने पर वे रोए नहीं, ठहाके लगायें और यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजली होगी। उनके निधन पर अग्रोहा विकास ट्रस्ट हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है। संपूर्ण अग्रवाल समाज के लिये यह एक अपूर्णीय क्षति है किन्तु वे मरकर भी अमर हैं। हास्य के इस शिखर पुरुष को हमारा शत-शत नमन्।

-श्री दिनेश गुप्ता, 3-बी-15, जवाहरनगर, श्रीगंगानगर

पद्मभूषण श्री सीताराम सेकसरिया-एक व्यक्तित्व

शेखावटी की धरा जहां शौर्य का प्रदर्शन करने के लिये प्रसिद्ध रही है वहीं मुक्त हस्त से अर्थदान में अग्रणी रहने के साथ-साथ यहां की पावन भूमि ने अनेक महापुरुषों भी को जन्म दिया है जो राष्ट्र के लिये ही नहीं अपितु विश्व के लिये पूजनीय है। उन महापुरुषों की शृंखला में ही नारी शिक्षा के प्रेरक, गांधीवादी विचारधारा के अनुयायी, खादी आंदोलन के नायक, अग्रणी समाज सुधारक, महान स्वतंत्रता सेनानी श्री सीताराम सेकसरिया का जन्म नवलगढ़ नगर की पावन धरा पर सेठ नथमल जी सेकसरिया के घर दिनांक 1 मई 1892 को हुआ। आपने अपनी प्रारंभिक शिक्षा (महाजनी शिक्षा) नवलगढ़ में ही गुरू पाठशाला में मात्र तीन वर्ष तक प्राप्त की।

विधि की विडम्बना कहें या संघर्षमय जीवन की शुरुआत नौ वर्ष की अल्पायु में ही आपके पिताजी का निधन कलकत्ता में एक परित्यक्त रोगी की सेवा करते हुए प्लेग की बीमारी से हो गया। इस पर भी ईश्वर को संतोष नहीं हुआ, पिताजी के मृत्यु के 7-8 माह बाद ही मां की मृत्यु भी हो गयी और सेकसरिया जी का भरण-पोषण का भार पूज्य दादाजी श्री बिरधीचन्द जी के कंधों पर आ गया।

पिताजी की मृत्यु के पश्चात आप अपना अध्ययन कार्य छोड़कर दादाजी के व्यापार कार्यों में सहयोग करने लगे, साढ़े दस वर्ष की अल्पायु में ही आपका विवाह हो गया।

बचपन से ही आप भगवान शिव की आराधना घंटों तक किया करते थे। प्राचीन रूढ़िवादिता, अंधविश्वास, धर्मान्धता तो वैश्य कुल में पैदा होने से आपको विरासत में मिली थी परंतु आपकी बुद्धि-विवेक तथा चिंतनशीलता व ईश्वर आराधना से आपके अंतकरण ज्ञान का प्रकाश देदीप्यमान हो गया। परिणामस्वरूप मानव-मानव का भेद समाप्त हो, रूढ़िवादितायें, अन्धविश्वास एवं

छूआछूत के आप कट्टर विरोधी हुये।

17 वर्ष की उम्र में आपको पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। संघर्षमय जीवन में एक नई रोशनी का संचार हुआ परंतु ईश्वर को सेकसरिया जी को सांसारिक पुरुष न बनाकर महापुरुष बनाना था। उसी परीक्षा के दौरान पुत्र जन्म के एक वर्ष पश्चात ही पत्नी और पुत्र दोनों का देहान्त हो गया। परन्तु आपने हार स्वीकार न कर अपना संघर्षमय जीवन जारी रखा। नवलगढ़ नगर की सुरेका परिवार की कन्या भगवानी देवी सुरेका से आपका दूसरा विवाह हुआ जो मृत्युपर्यन्त आपकी सहयोगिनी रही।

कलकत्ता आगमन-

सन् 1911 में आप धनोपार्जन के लिये कलकत्ता पधारे। यहां पर रायसाहब शिवप्रसाद झुंझुनूवाला के यहां लगातार 6-7 वर्ष तक नौकरी करने के पश्चात आपने शेयर बाजार में दलाली प्रारंभ की और सन् 1916-17 में नवलगढ़ के रामरीख जी पाटोदिया के साथ सीताराम रामरीख फर्म की स्थापना कर अपना निजी व्यापार प्रारंभ किया। अपना निजी कारोबार होने की वजह से व्यापार कार्यों के साथ-साथ सामाजिक कार्यक्रमों में भी आने-जाने का समय मिलने लगा, इसी दौरान आपका परिचय प्रमुख समाज सुधारक पूज्य ताऊजी श्री बसंतलाल जी मुरारका, उनके मित्र श्री भागीरथमल जी कानोडिया, रामकुमार जी भुवालका, प्रभुदयाल जी हिम्मतसिंहका से हुआ। उनके साथ आप मेलों, उत्सवों आदि में स्वयंसेवक के रूप में जाने लगे। धीरे-धीरे आपकी भी रुचि समाज सुधार, स्त्री शिक्षा अैर स्वाधीनता आंदोलन की ओर हुई जिसमें आपने सक्रिय भूमिका निभायी।

स्वाधीनता आंदोलन में योगदान :

सन् 1921 में पूरे देश में असहयोग आंदोलन चल रहा था, आपने भी इसमें भाग लिया, इसी दौरान आपका परिचय सेठ जमनालाल बजाज से हुआ और उनकी प्रेरणा से ही आप खादी आंदोलन, स्वदेशी आंदोलन, गांधी जी के सत्याग्रहों में अग्रणी रहकर उनको नेतृत्व प्रदान किया। आंदोलनों के दौरान आप अनेकों बार जेल गये। जेल की बड़ी से बड़ी यातनाएं सहकर भी आप अंग्रेजों से निरंतर लोहा लेते रहे। आप जैसे महापुरुषों के त्याग व बलिदान के फलसवरूप ही भारत देश आजाद हुआ।

प्रमुख समाज सुधारक:

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समाज में होने वाले कार्यों से वह अपने आपको कभी भी दूर नहीं कर सकता, समाज में रहकर समाज में व्याप्त कुरीतियों को समाप्त करने के लिये आपने सतत् प्रयास किया। जिसमें विधवा विवाह करवाने में आपकी प्रमुख भूमिका रही। आपने अनेक बहिनों एवं परिवारों को प्रेरित किया परिणामस्वरूप आपको एक बार बिरादरी से भी निकाल दिया परन्तु आप अपने निर्णय पर अडिग रहे।

यदि यहां यह कहा जाये कि श्री सेकसरिया जी के जीवन के संपूर्ण कार्यकलाप समाज सेवा के लिये ही थे, तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। समाज का अर्थ उनके मानव समाज से था वो किसी विशेष समाज की बात न सोचकर समाज के हित की बात सोचा करते थे। मानव सेवा ही उनके लिये ईश्वर की सच्ची आराधना थी।

वे विशेषत: हरिजन एवं महिलाओं की उन्नति के लिये ज्यादा चिंतनशील रहते थे। पिछड़े इलाकों में शिक्षा की व्यवस्था कैसे हो महिला समाज घर की चारदीवारी से निकलकर राष्ट्र की मूलधारा में पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चले यही दृष्टिकोण सदैव बना रहा।

आपने शिक्षा के प्रसार के लिये कलकत्ता में विश्वप्रसिद्ध शिक्षा संस्थान शिक्षापतन स्थापित किया। साथ ही राजस्थान में भी वनस्थली विद्यापीठ जैसी नारी शिक्षा की अनेक संस्थाओं की स्थापना में प्रमुख भूमिका अदा की। आपका यह विचार कितना उच्च है कि एक पुरुष को शिक्षित करना एक व्यक्ति को शिक्षित करना है परंतु एक नारी को शिक्षित करना एक परिवार को शिक्षित करना है।

भविष्य दृष्टा

आप दैनिक डायरी लिखा करते थे। आपकी प्रकाशित डायरी को पढ़ने से यह पता चलता है कि आपने 60 वर्ष पूर्व जिस बात का चिंतन किया था, वह आज पूरे देश के लिये ही नहीं, अपितु विश्व के लिये एक समस्या बनकर सामने खड़ी है। पूरा राष्ट्र साम्प्रदायिकता की आग में झुलस रहा है। मानव-मानव के खून का प्यास हो रहा है। कहते हैं कि घर की स्त्री जाते हुए पति की पीठ देखती है परंतु उसके आते हुए का चेहरा देखने को आंखें तरसती रहती है। 11 सितम्बर

1931 को चटगांव में हुई लूट के विषय में आप लिखते हैं कि प्रभु की जब इच्छा होगी तब ही हिन्दू और मुसलमानों में सदभाव होगा। उस दिन देश का मंगल होगा।

श्री सेकसरिया जी के रचनात्मक कार्यों से प्रेरित होकर तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कृतज्ञ राष्ट्र की ओर से दिनांक 28 अप्रेल 1962 को आपको पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया था।

उपरोक्त संक्षिप्त तथ्यों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि स्वर्गीय पद्मभूषण श्री सीताराम सेकसरिया की एक ऐसी छवि है जो जनमानस के पटल पर आदिकाल तक रहेगी उनका महान व्यक्ति सादगी व सरलता भावी पीढ़ी के लिये सदैव प्रेरणादायक रहेगी।

धन्य है पुरुष जिसने आपका सान्निध्य पाया।
धन्य है वह जिसने आपको अपना बनाया।
हम तो मिले थे केवल दो बार
उसी में मिला था मुझे जीवन का सार
धन्य है नवलगढ़ धन्य है शेखावटी
आपसे ही धन्य हुई भारत की माटी।

--श्री कान्त मुरारका, प्रदेश मंत्री
श्री राजस्थान अग्रवाल संघ बावड़ी गेट, नवलगढ़

क्रांतिकारी राष्ट्रभक्त

श्री राधामोहन गोकुल जी

श्री राधामोहन गोकुल जी एक अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त चिंतक, लेखक तथा स्वाधीनता संग्राम के जुझारू सेनानी थे। उनकी लिखी पुस्तकों व लेखों से संसार के अनेक देशों के विचारकों ने समता, समाजवाद, स्वाधीनता तथा स्वदेश प्रेम की प्रेरणा ली। श्री राधा मोहन गोकुल जी एक जन्मजात क्रांतिकारी, कुरीतियों व अन्धविश्वास के प्रबल विरोधी तथा मौलिक चिंतक थे। यह बहुत कम व्यक्तियों को मालूम होगा कि शहीदे-आजम सरदार भगतसिंह ने लाहौर में जिस पिस्तौल से सांडर्स की हत्या का प्रयास किया था; वह श्री राधा मोहन गोकुल जी द्वारा मुहैया कराई गई थी। श्री राधामोहन जी का जन्म 15 दिसमबर 1865 का ला. गोकुलचन्द अग्रवाल के घर हुआ था। सन् 1904 में वे कलकत्ता पहुंचे तथा वहां बंगाली क्रांतिकारियों के सम्पर्क में आये। कुछ वर्ष बाद वे अग्रवाल समाज की विभूति प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका, श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार तथा अन्य युवकों के साथ क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लेने लगे। सन् 1914 में रोडा कम्पनी द्वारा विदेशों से मंगाये गये हथियारों व कारतूसों को गायब कर क्रांतिकारियों तक पहुंचाने वाली घटना में भाईजी (श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार) तथा अन्यों के साथ राधामोहन गोकुल जी का भी हाथ था।

श्री राधामोहन जी की प्रारंभिक शिक्षा हिन्दी तथा उर्दू में बिहार तथा शहजादपुर के स्कूलों में हुई। तत्पश्चात आप आगे पढ़ने के उद्देश्य से अपने ताऊ जी के पास कानपुर गए जहां फारसी तथा बही खाता संबंधी ज्ञान प्राप्त किया। आगरा के सेंटजॉन्स कालिजियट स्कूल में कुछ अंग्रेजी भी पढ़ी, किन्तु बचपन में विवाह हो जाने तथा घर की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण विद्योपार्जन में बाधाएं आयीं। इलाहाबाद के एक सरकारी कार्यालय में कुछ दिन तक बीस रुपय मासिक की नौकरी की परंतु किसी गोरे कर्मचारी से मतभेद हो जाने के

कारण वह नौकरी भी छोड़नी पड़ी।

आपको बहुत छोटी अवस्था से ही स्वदेश एवं स्वदेशी की भावना से गहरा लगाव था। यही कारण है कि तग-दस्त होने के बावजूद इलाहाबाद की स्वदेशी व्यापार कंपनी में 25 रुपये का शेयर खरीदा।

इलहाबाद में नौकरी समाप्त हो जाने पर राधामोहन जी रीवां तथा फिर कानपुर गये। कानपुर में प्रतापनारायण मिश्र के सम्पर्क में आये। राधामोहन जी की साहित्य सेवा का विधिवत श्रीगणेश यहीं पर हुआ। यहीं पर आपने तत्कालीन भारत की दयनीय दशा पर एक पुस्तक भी लिखी।

पारिवारिक समस्याएं एवं दुर्घटनाएं सदैव राधामोहन जी के सम्मुख अजगर सा मुंह खोले खड़ी रहीं। आपको अपनी पत्नी और एक पुत्री की मृत्यु का बिछोह भी सहन करना पड़ा। राधामोहन जी ने घरवालों के दबाव से दूसरा विवाह तो किया परंतु एक विधवा के साथ। किन्तु विधवा का परिवार एवं समाज द्वारा विरोध होने पर राधामोहन जी पहले मुम्बई और फिर बीकानेर चले गये। कुछ दिन परिवार के साथ आगरा में भी रहे।

श्री राधामोहन जी के अंदर समाज को उसके उत्कृष्ट रूप में देखने की तीव्र आकांक्षा थी। उन्होंने प्रत्येक प्रकार के अंधविश्वास तथा रूढ़ियों के विरोध में जमकर प्रचार किया तथा इस संबंध में सुरुचिपूर्ण प्रेरणादायक और सामाजिक सुधार से संबंधित साहित्य की रचना की। उन्होंने सत्य सनातन धर्म नाम का पत्र भी निकाला।

श्री राधामोहन जी ने अपने कलकत्ता प्रवास के दौरान बहुत से प्रेरणादायक साहित्य की रचना की। 1907 में लाला लाजपतराय जी को देश निकाला दिए जाने पर देशभक्त लाजपत नामक पुस्तक लिखी।

श्री राधामोहन जी ने इटली के महान देशभक्त एवं भारतीय क्रांतिकारियों के प्रेरणास्रोत मैजिनी और गैरीबाल्डी से प्रभावित होकर उनकी जीवनियां लिखीं। यंग इटली नामक पुस्तक भी काफी लोकप्रिय हुई।

जब काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने मनोरंजन पुस्तक माला का प्रकाशन आरंभ किया तो राधामोहन जी ने इस क्रम में नेपोलियन बोनापार्ट का जीवन चरित्र लिखकर अपना योगदान दिया। ओंकार पुस्तक माला के अंतर्गत गुरू गोविन्द सिंह का जीवन चरित्र लिखकर प्रकाशित किया।

श्री राधामोहन जी अंग्रेजों द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था के तहत-नहस

किए जाने तथा मजदूरों और कर्मकारों के शोषण से अत्यंत क्षुब्ध थे और सन् 1908 में जब भारतीय अर्थ व्यवस्था पर कोई रचना लगभग अप्राप्य थी, राधामोहन जी ने अर्थशास्त्र की पुस्तक 'देश का धन' से देशवासियों को परिचित कराया। नीति दर्शन भी आपकी उल्लेखनीय रचना है।

उन्होंने 1921 की तपती हुई गर्मियों में अपना जमा जमाया ढर्रा एवं कारोबार त्याग कर नागपुर के असहयोग आश्रम का निरीक्षक बनकर अपना योगदान प्रदान करने का निश्चय किया और पूरे जोशो-खरोश के साथ आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। यहीं पर सरकार द्वारा उनके किसी भाषण को राजद्रोही करार देकर उन्हें दो वर्ष का कारावास भी दिया गया।

यहां पर वे सतीदास मूंधड़ा के संपर्क में आये तथा उनके विचारों से प्रेरित होकर प्रणवीर का प्रकाशन एवं संपादन किया। परंतु राधामोहन जी अपनी राजनैतिक गतिविधियों एवं अपनी गिरफ्तारियों के कारण प्रणवीर के संपादन को भी अधिक समय न दे सके। यद्यपि प्राणवीर का कार्य चलता रहता था तथा श्री सत्यभक्त उस दायित्व को निभाते रहे और प्रणवीर ने काफी प्रगति भी की। परंतु श्री सत्यभक्त के ही अनुसार ध्यान उस समय साम्यवादी आंदोलन की ओर झुका था, इसलिए सब प्रकार की सुविधा और प्रगति की संभावना होने पर भी उस कार्य को छोड़कर वे कानपुर चले आये। उसके बाद राधामोहन जी को भी उन्होंने वहीं बुलवा लिया। वहां रहकर वे क्रांतिकारी दल का ऐसा कार्य कर सके जिसके लिये आज भी उनको स्मरण किया जाता है।

कानपुर में श्री राधामोहन जी ने क्रांतिकारी पार्टी के संगठन में भी सहयोग दिया। एक बार वे क्रांतिकारी कार्य के सिलसिले में राजा महेन्द्र प्रताप से भेंट करने के लिये नेपाल गये परंतु भेंट न हो सकी।

मेरठ कांस्पिरेसी केस के सिलसिले में श्री राधामोहन गोकुल जी के छोटे भाई के मकान पर जहां राधामोहन जी आगरा जाने पर ठहरा सकते थे, तलाशी हुई। परंतु पुलिस कुछ भी आपत्तिजनक सामग्री न पा सकी, केवल कम्युनिज्म क्या है? पुस्तक की कुछ प्रतियां ही उसके हाथ लगीं। तलाशी के समय श्री राधामोहन जी आगरा में नहीं थे।

श्री राधामोहन जी इसके बाद कानपुर चले आये और क्रांतिकारियों को सहयोग भी देते रहे परंतु 1930 में पुलिस ने पुनः कुछ अभियोग लगाकर आपको जेल भेज दिया। जेल में राधामोहन जी के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ा। जेल से

छूटकर श्री राधामोहन जी इलाहाबाद पहुंचे। वहां पर भी सीआईडी की निगाह श्री राधामोहन जी पर लगी हुई थी। जिससे बचने के लिये वे हमीरपुर के खोही गांव में पहुंचे। यहां पर उनको पेचिश का भयंकर रोग लग गया तथा उनका स्वास्थ्य बुरी तरह बिगड़ गया और एक महान व्यक्तित्व की जीवन लीला समाप्त हो गई।

श्री राधामोहन गोकुल जी की साहित्य सेवा और उनकी रचनाओं का जिक्र ऊपर किया जा चुका है। उनकी सभी रचनाओं का विस्तृत विवेचन इस छोटे से लेख में संभव नहीं है। अस्तु, यहां पर मैं उनकी सबसे महत्वपूर्ण रचना की ओर ही पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा। मेरे विचार से उनकी ये रचना आज भी हमारे लिये उतनी ही उपयोगी है।

पहली पुस्तक कम्युनिज्म क्या है? में मार्क्सवाद एवं कम्युनिज्म के आधारभूत सिद्धान्तों को सरल एवं सादी भाषा में बहुत ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। जिन लोगों ने मार्क्सवाद या कम्युनिज्म के संबंध में कुछ भी नहीं पढ़ा है। उनके लिये यह पुस्तक आज भी अत्यन्त उपयोगी है।

– शिव वर्मा (विख्यात क्रांतिकारी सेनानी)

बिहार के गांधी और संथाल परगना के जनसेवक

श्री मोतीलाल केजड़ीवाल

प्रातः स्मरणीय शशिभूषण राय के बाद जिस व्यक्तित्व ने अपने त्याग और तपस्यामय जीवन से अविभाजित संथाल परगना को आलोकित किया था, उनका नाम है मोतीलाल केजड़ीवाल। संथाल परगने का ऐसा कौन सा गांव होगा जिस पर मोती बाबू का पद चिन्ह अंकित नहीं होगा। बीहड़ बियाबान जंगलों तथा पहाड़ की चोटियों पर भी उनके पद-चिन्ह अंकित है। संथाल परगना की सोयी हुई आदिवासी और गैर आदिवासी आबादी के बीच चेतना का शंख फूंखते हुए एवं उजड़े हुए ग्रामों के पुनर्निर्माण के सिलसिले में मोतीलाल केजड़ीवाल की जो साधना है उसे संथाल परगना की जनता भुला नहीं सकती। मोतीबाबू के इस नाम से एक सेवामय व्यक्ति का चित्र सामने उभर आता है। सन् 1953 के उत्तरार्द्ध में फुलवारी शरीफ स्थित पटना कैंप जेल में मुझे उनके दर्शन हुए थे प्रथम बार, जब बिहार और उड़ीसा एक ही प्रशासनिक इकाई में गूंथा हुआ था। उस समय उड़ीसा के स्वाधीनता संग्रामियों को भी पटना कैंप जेल में रखा जाता था। बालेश्वर जिले के सरदार सुरेन्द्र बाबू के साथ मैंने मोतीलाल केजड़ीवाल के दर्शन किये थे। चेहरे मोहरे से शरीर और कद में मोतीलाल केजड़ीवाल और मैं एक-से लग रहे थे और उस दिन न जाने क्यों उनके प्रति मेरी अहेतुक श्रद्धा उमड़ पडी। मुझे ऐसा लगा कि यह व्यक्तित्व मेरा अपना है। उसी दिन से, उस मुलाकात के बाद से मोतीबाबू के दिवंगत हो जाने के समय तक उनके साथ मेरा पिता-पुत्र का-सा संबंध बना रहा और आज तक भी उनके पुत्र-पुत्रियां मुझे अपना बड़ा भाई मानते आ रहे हैं।

जेल से बाहर आने के बाद मैं देवघर के हिन्दी विद्यापीठ में दाखिल हो गया। अपनी सजा भुगतकर मोतीबाबू जब देवघर आये, तब उनके लिये जो

अभ्यर्थना सभा का आयोजन हुआ था। उसमें भी उनके दर्शन हुए। उस सभा के आयोजक कृषि प्राण शशिभूषण राय ने उस दिन मोतीबाबू के बारे में जो उद्‌गार प्रकट किये थे उनके वे शब्द आज भी मेरे मानस पर अंकित हैं। उनके त्यागमय जीवन का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा था- मोतीलाल केजड़ीवाल केवल संथाल परगना के ही नहीं, बल्कि बिहार के और सारे देश के एक मोती है। शशि बाबू के शब्दों में कोई बनावटीपन कभी नहीं रहा और मोती बाबू का समग्र त्याग, तपस्या और साधनामय जीवन तो मेरे सामने से ही गुजरा है। संथाल परगना के राजनीतिक कार्यों, सामाजिक सेवा कार्यों, आदिवासी सेवा कार्यों में तथा उनके द्वारा चलाये गये साहित्यिक कार्यों में मैं उनके एक अंग के रूप में अंत तक जुड़ा रहा। इसे संथाल परगना के लोग अनुभव करते रहे हैं। उनकी विद्रोही भावनाओं को शब्द देने में तथा उसे कार्य रूप में परिणति करने में केवल मैं ही उनके साथ नहीं रहा, भाई श्रीकृष्ण प्रसाद, सत्यकाली भट्‌टाचार्य (सत्यम् भाई), जगदीश नारायण मंडल, सत्यनारायण पांडेय, लक्ष्मी नारायण राय, खुदीराम सेन आदि साथी भी उनके साथ-साथ रहे हैं।

संथाल परगना के हर स्वाधीनता संग्रामी और समाजसेवी लोगों के साथ उनकी गहरी आत्मीयता रही है और सब कोई यह महसूस करते थे कि मोतीबाबू उनके परिवार के ही एक व्यक्ति हैं। व्यक्ति के रूप में वे एक संस्था थे।

एक धनी परिवार में मोतीबाबू का जन्म 19 मई, 1902 को हुआ और कानपुर के एक धनी परिवार में उनका विवाह हुआ श्रीमती महादेवी केजड़ीवाल के साथ। मोतीलाल केजड़ीवाल चार पुत्रियों और तीन पुत्रों के पिता बने। तब तक उनके व्यापार की गद्दी कलकत्ता से उठकर जसीडीह चली आयी थी। जसीडीह में एक तेल मिल के वे मालिक थे और कपड़े की एक दुकान भी थी, जिसे उनके छोटे भाई बृजमोहन चलाते थे। सन् 1920 में ही उनके हृदय में राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ था और गांधी जी के आह्वान पर उन्होंने सरकारी विद्यालय की शिक्षा का परित्याग कर दिया था। घर में ही एक एंग्लो इण्डियन महिला ने उन्हें अंग्रेजी और एक संस्कृत पंडित ने संस्कृत पढ़ाया, इस प्रकार मोतीबाबू अपनी घरेलू शिक्षा द्वारा ही हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत के अच्छे ज्ञाता हो गये।

सन् 1935 में मोतीबाबू के मन में गांधी जी के आश्रम में रहने का विचार आया। उन्होंने सेठ जमनालाल बजाज को अपना विचार लिख भेजा।

जमनालाल जी ने उन्हें अपने पास बुलाया और सेवा ग्राम में गांधी जी से मिलाया। गांधी जी ने मोतीबाबू से पूछा- तुम्हारे परिवार में कितने व्यक्ति हैं, जिनका बोझ तुम्हारे ऊपर है। मैं तुमको, तुम्हारी पत्नी और दो बच्चों को आश्रम में ले सकता हूं। तुम बताओ कि तुम्हारे परिवार में कितने लोग हैं। जब मोतीबाबू ने बताया कि उनके पति-पत्नी के अतिरिक्त चार पुत्रियां और तीन पुत्र हैं, तब गांधी जी ने हंसते हुए कहा- उन सबों को गंगा में डालकर केवल पत्नी के साथ तुम आ सकते हो तो आश्रम में आ जाओ।

मोतीबाबू किंकर्तव्य विमूढ़ से जसीडीह लौट आये और घर-परिवार से उदासीन होकर अपना सारा समय कांग्रेस के संगठन में लगा दिया। देवघर की एक सार्वजनिक सभा में उन्होंने अपने परिवार के त्यागने की घोषणा की और कहा- आज मैंने कांग्रेस के संगठन के लिये अपना घर-परिवार त्याग दिया है। मैं सत्य हरिश्चन्द्र तो नहीं, फिर भी मेरी पत्नी शैय्या के रूप में यहां खड़ी हुई है और मैं चाहता हूं कि शशिभूषण राय की पत्नी की तरह मेरी पत्नी अपने बच्चों के साथ मेरे साथ-साथ चलकर गांधी जी के आंदोलन में शरीक हो जाए।

मैं उस वक्त हिन्दी विद्यापीठ का छात्र था। उनका भाषण सुनकर उस दिन मेरी आंखें आंसुओं से भर गयी थीं। उसी समय में मृत्यु तक यानी 2 जुलाई 1980 तक उन्होंने अपना प्रण निबाहा और घर-परिवार के लिय कुछ नहीं किया। परिवार का सारा बोझ उनक ज्येष्ठ पत्र गोविन्द प्रसाद केजड़ीवाल पर आन पड़ा, जो उस समय नाबालिग थे। गोविन्द ने अपने पौरुष और हिम्मत के बल पर अपने सभी भाई-बहनों को अपने साथ रखकर पढ़ाया-लिखाया और आदमी बनाया। उनके शादी-विवाह भी कराये, जिसे मैंने अपनी आंखों से देखा है। जसीडीह को छोड़कर गोविन्द जी काशी चले गये और भागीरथ कानोडिया के जूट मिले में एक छोटी-सी नौकरी पकड़ ली। वाराणसी की गोगरानी गली में एक छोटा-सा मकान किराये पर लेकर माता और भाई-बहनों को अपने साथ रखा, पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखा और (स्वयं भी) एम.ए. तक की पढ़ाई करके अपने लिए आगे का मार्ग प्रशस्त किया, इसे मैंने अपनी आंखों से देखा है। गोविन्द इन दिनों दिल्ली के पितमपुरा में रहते हैं। उन्होंने अपनी माता की स्मृति कायम रखने के लिये अपना आवास का नाम महादेवी निलय रखा है। इन्होंने सप्ताहिक हिन्दुस्तान के संपादक का भी कार्य अनेक वर्षों तक किया है।

उधर मोतीलाल केजड़ीवाल एक साथ जिला कांग्रेस के सभापति का

पद, जिला बोर्ड के उपाध्यक्ष का पद और संथालों के बीच शिक्षाश्रमों के संचालन का भार संभालते रहे। सन् 1940 के उत्तरार्द्ध में विद्यापीठ का स्नताक होने के बाद मैं भी छाया की तरह उनके साथ रहकर उनका कार्यभार कुछ हल्का करने का प्रयत्न करता रहा।

जिला बोर्ड के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने जिले के सैकड़ों निम्न प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में जो राष्ट्रीय चेतना जगायी थी उसका उदाहरण न तब था और न आज है। हर शिक्षक को चरखे के प्रशिक्षण के साथ हिन्दी का प्रशिक्षण भी दिया गया। हर शिक्षक के लिये खादी पहनना अनिवार्य बना दिया गया और हर विद्यालय में राष्ट्रीय झंडा फहराने लगा। प्रत्येक विद्यालय की दीवारों पर किसान चरखा टंगा हुआ दिखायी देने लगा। प्रशिक्षण के सारे कामों का हिन्दी विद्यापीठ के दो स्नातक सागर राय और शंभुनाथ बलिया से संपादन कर रहे थे। मोतीबाबू के साथ मैं भी घूम-घूमकर विद्यालयों में राष्ट्रीय चेतना के विकास कार्य में भाग ले रहा था। उनका यह कार्य 1941 के व्यक्तिगत सत्याग्रह में और 1942 की क्रान्ति में बहुत ही सहायक सिद्ध हुआ था। जिधर मोती बाबू की कार जाती थी या पैदल यात्रा होती थी, उधर अनुभव हो जाता था, जैसे चेतना का सूर्योदय हो रहा है।

1941 में जब गांधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह छेड़ा था और प्रथम सत्याग्रही के रूप में विनोबा भावे के मस्तक पर तिलक लगाया था तब बहुत लोग उनके इस सत्याग्रह का अर्थ समझ नहीं पाये थे। उस समय के सत्याग्रहियों का नारा केवल इतना ही था कि- अंग्रेजों की इस साम्राज्यशाही लड़ाई में हम नहीं देंगे एक पाई, नहीं देंगे एक भाई।

गांधी जी उस समय समग्र देश में चलने वाले व्यक्तिगत सत्याग्रह के डिक्टेटर बने और प्रत्येक राज्य के लिये स्वयं गांधी जी ने डिक्टेटर मनोनीत किया और प्रो. अब्दुल बारी को सहायक डिक्टेटर। संथाल परगना में मोतीबाबू डिक्टेटर और मैं सहायक डिक्टेटर मनोनीत किया गया था। हम दोनों जिले भर में घूम-घूम कर व्यक्तिगत सत्याग्रह करा रहे थे। कहना न होग कि इसमें संथाल परगना बिहार भर में सबसे आगे रहा।

1942 की क्रान्ति में मोतीबाबू ने सारे संथाल परगना में घूम-घूमकर क्रान्ति की आग भड़कायी थी। उन्हीं से प्रेरणा पाकर मैंने, श्री कृष्ण प्रसाद ने, के. गोपालन ने तथा लाल हेम्बरम और बरियार हेम्बरम आदि साथियों ने सारे दामिन

इलाके में अंग्रेजी शासन को बहुत दिनों के लिये ठप कर दिया था।

मोतीबाबू को गिरफ्तार कर भागलपुर जेल में बंद कर दिया गया। वहां उनकी बीमार आंखों का ठीक से इलाज नहीं हो सका और उनकी दोनों आंखों की रोशनी पूर्णतः चली गयी।

जब अंग्रेज भारत छोड़कर चले गये, तब मोतीबाबू ने जिले में गांधी जी के रचनात्मक कार्यों का बीड़ा उठाया। इसमें श्रीकृष्णप्रसाद और लक्ष्मीनारायण राय ने उनका भरपूर साथ दिया। संथाल परगना ग्रामोद्योग समिति की स्थापना उन्हीं के हाथों हुई। जब विनोबा जी ने भूदान आंदोलन चलाया, तब मोतीबाबू ने अंधे होने पर भी पैदल चलकर संस्थाल परगना में भूदान की ज्योति जलायी और एक दिन समग्र जिला दान का कार्य पूरा हुआ। जिले के निवासियों को नवनिर्माण की ओर प्रेरित करने के लिये निर्माण नामक मासिक पत्र का संपादन वे स्वयं करते थे और गांधी-विचारधारा का प्रचार करने के लिये गांधी संदेश नामक साप्ताहिक का भी आगे चलकर प्रकाशन किया गया, जिसका संपादन पहले तो वे स्वयं करते थे, पर बाद में इसका भार श्रीकृष्ण प्रसाद पर डाला गया। मोतीबाबू के समाजोपयोगी लेख उस समय के पत्र-पत्रिकाओं में भी खूब प्रकाशित हुए।

मोतीबाबू को संपूर्ण रूप से कई उपनिषद् और गीता कंठस्थ थे। उनके वेदान्त ज्ञान तथा उपनिषद अध्ययन से स्वयं विनोबा जी विस्मित थे। आजादी के बाद भी उनका क्रान्तिकारी चरित्र लुप्त नहीं हुआ। खादी, ग्रामोद्योग, शराबबंदी, आदिवासी सेवा, हरिजन-उत्थान, भूदानी-ग्रामदानी गांवों के पुनर्निर्माण आदि कामों में वे सतत लगे रहे। उन्होंने सैकड़ों कार्यकर्ताओं का निर्माण कर क्रांतिकारी और रचनात्मक कामों में लगाया था। एक सर्वोदय नेता के रूप में उनकी प्रतिष्ठा न केवल बिहार में बल्कि सारे देश के सर्वोदयी नेताओं में थी।

ऐसे कर्मठ मोती बाबू ने अपनी अंतिम सांस प्यारी पुत्री पार्वती देवी और प्यारे जांमाता बजरंग लाल केडिया के पटना स्थित मकान में 2 जुलाई 1980 को ली। उनका पार्थिव शरीर गंगा किनारे बांसघाट के उस स्थान में समर्पित किया गया, जहां एक दिन राजेन्द्र बाबू के पार्थिव शरीर को अग्नि देव आत्मसात किया था।

--श्री प्रफुल्ल चन्द पटनायक
बरपाली, जिला-संबलपुर (उड़ीसा)

स्वाभिमानी पत्रकार थे

बाबू बालमुकन्द गुप्त

सम्पूर्ण भारत में स्वर्ग या देवभूमि हरियाणा प्रदेश को यह गौरव प्राप्त है जहां गीता जैसे धार्मिक आध्यात्मिक तथा नीति ग्रंथ की रचना हुई। इसी प्रदेश की पावन भूमि कुरूक्षेत्र के मैदान में महायुद्ध महाभारत हुआ। अग्रकुल के संस्थापक महाराज अग्रसेन की राजधानी अग्रोहा भी इसी प्रदेश के जिला हिसार में हिसार सिरसा मार्ग पर अवस्थित है जिसमें अब अनेकों जनकल्याणकारी निर्माण कार्य चल रहे हैं। अग्रकुल ने देश को अनेकों धन कुबेर तथा दानवीर भी दिये हैं जिनमें एक गरिमापूर्ण नाम है हिन्दू केसरी महाराणा प्रताप के अत्यन्त विश्वस्त तथा वशिष्ठ मंत्री भामाशाह का जिन्होंने महाराणा प्रताप को पुनः सेना एकत्रित कर युद्ध करने के लिये अपना सर्वस्व भेंट कर दिया था। भामाशाह के पूर्वज भी मूलतः इसी हरियाणा प्रदेश के महम गांव के मूल निवासी थे जो कालान्तर में हरियाणा के महम से पलायन करके राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र में जाकर बस गये थे ऐसी मान्यता है।

हरियाणा प्रदेश में अग्रवाल जाति ने केवल धन कुबेर ही दिये हों, ऐसा नहीं है, इस जाति ने अनेकों निडर नेता, समाजसेवक, दानवीर, समाज सुधारक, न्यायविद्, साहित्यकार तथा निडर एवं स्वाभिमानी पत्रकार भी दिये हैं जिन पर गर्व होना और श्रद्धापूर्वक नतमस्तक होना हर देश प्रेमी का कर्तव्य है। ऐसे ही निडर तथा स्वाभिमानी पत्रकारों में एक नाम है बाबू बालमुकन्द गुप्त का। शिव शम्भु का चिट्ठा जैसी अमर रचना के लेखक और निडर पत्रकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त का। शिव शम्भु का चिट्ठा जैसी अमर रचना के लेखक और निडर पत्रकार बाबू बालमुकन्द गुप्त हरियाणा की महान विभूति थे जिन पर हमारा गौरवान्वित होना स्वाभाविक है। बाबू बालमुकुन्द का जन्म हरियाणा प्रदेश के जिला रोहतक के ग्राम गुडियानी में कार्तिक शुक्ला चतुर्थी संवत् 1922 में हुआ था और 18

सितम्बर 1907 को उनका स्वर्गवास हो गया। ग्राम गुडियानी सैनिक बाहुल्य गांव कौसली के पास है।

प्रारंभ में गुप्त जी उर्दू के जाने-माने लेखक तथा पत्रकार थे। गुप्त जी की पत्रकारिता का अवतरण 1886 में अखबारे चुनार के सम्पादक के रूप में हुआ। बाद में आपका संपर्क उस समय के प्रसिद्ध व्याख्यान वाचस्पति पण्डित दीनदयालु शर्मा से हो गया। जो कालान्तर में अंतरंग मित्रता में बदल गया। बाद में उन्हीं के अनुरोध पर आप लाहौर से प्रकाशित कोहनूर नामक पत्र के सम्पादन में जुट गये। उस समय उर्दू साहित्य में आपका विशिष्ट स्थान था। कालान्तर में आप महामना पं. मदनमोहन मालवीय के सम्पर्क में आये। मालवीय जी हिन्दी दैनिक हिन्दोस्थान के प्रधान सम्पादक के रूप में कार्य कर रहे थे, उन्होंने सम्पादकीय विभाग में अपने सहायक के रूप में काम करने के लिये आपको भी आमंत्रित किया था। इस प्रथम हिन्दी दैनिक का प्रकाशन कालाकांकर नरेश राजा रामपाल सिंह ने आरंभ किया था। महामना मदन मोहन मालवीय इस पत्र के प्रधान सम्पादक नियुक्त किये गये।

कहते हैं राजा साहब बहुत अधिक मदिरा पान करते थे। मावलीय जी ने अपनी नियुक्ति के समय ही एक शर्त तय कर ली थी जब कभी आप मुझे पत्र के सम्पादन संबंधी किन्हीं बातों पर विचार-विमर्श करने के लिये बुलायें उस समय आप मदिरा पीये हुए न हों।

कहते हैं कि राजा साहब ने अपनी शर्त का पालन ढाई वर्ष तक किया, किन्तु अकस्मात एक दिन राजा साहब जबकि पीये हुए थे, उन्होंने किसी कार्य से मालवीय जी को बुला भेजा। मालवीय जी को जब इस बात का पता चला कि राजा साहब ने उन्हें पीये हुए बुला लिया है तो उन्हें काफी दुख हुआ और उन्होंने तत्काल अपना त्यागपत्र राजा साहब को प्रस्तुत कर दिया। राजा साहब ने मालवीय जी से काफी क्षमा याचना की किन्तु मालवीय जी ने स्पष्ट शब्दों में यह कहते हुए उनकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी कि मनुष्य का वचन जीवन में केवल एक ही बार भंग हुआ करता है। तत्पश्चात सन् 1889 में बाबू बालमुकन्द गुप्त इस पत्र के सम्पादक नियुक्त हुए और यहीं से आपकी हिन्दी सेवा शुरू हुई। इसी पत्र में रहते हुए आप पं. प्रतापनारायण मिश्र के सम्पर्क में आये। मिश्र जी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रगाढ़ मित्र और हिन्दी के कुशल लेखक थे। इसी पत्र में रहते हुए आपने सर्वप्रथम व्यंग्य कविता भैंस का स्वर्ग लिखी।

गुप्त जी दैनिक हिन्दोस्थान में लगभग दो वर्ष तक रहे। इसके बाद आपने इस पत्र से अपना संबंध विच्छेद कर लिया और कलकत्ता से प्रकाशित एकमात्र हिन्दी दैनिक भारत मित्र के सम्पादक नियुक्त हुए। जीवन के अंतिम समय तक आप इसी पत्र में प्रधान सम्पादक के रूप में कार्य करते रहे। उक्त पत्र के संस्थापक थे श्री अमृतलाल चक्रवर्ती जो अपने समय के पक्के राष्ट्रवादी और समाज सुधारक थे। बाबू बालमुकन्द गुप्त एक कुशल लेखक और पत्रकार के अतिरिक्त अच्छी व्यंग्यात्मक कविताएं भी लिखते थे जिनमें प्राय: समाज पर तीखा व्यंग्य रहता था। गुप्त जी की कविताओं की भाषा सरल है। सन् 1899 में 9 अक्टूबर को दशहरा के अवसर पर आने टेसू शीर्षक लम्बी व्यंग्यात्मक कविता लिखी। प्रारंभिक चार पंक्तियां अवलोकनार्थ प्रस्तुत है।

आये आये टेसू राजा, पीटो पेट बजाओ बाजा।
अब के टेसू रस-रंगीले, छैल-छबीले नोक-नुकीले।

पण्डित माधवप्रसाद मिश्र द्वारा लिखित मालवीय जी के नाम खुली चिट्ठी आज भी उतनी ही प्रसिद्ध है जितनी कि उस समय थी। उसी प्रकार बाबू बालमुकुन्द जी गुप्त का शिव शम्भु का चिट्ठा भी हिन्दी साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान तथा स्थान रखता है और आज भी पहले की ही भांति प्रसिद्ध है। शिव शम्भु का चिट्ठा उस समय लिखा गया था जिस समय लार्ड कर्जन का दिल्ली दरबार हुआ था।

शिव शम्भु का चिट्ठा : आपने माई लार्ड। जबसे भारत वर्ष में पधारे हैं, बुलबुलों का स्वप्न ही देखा है या सचमुच करने योग्य कोई काम भी किया है? खाली अपना ही शौक पूरा किया है या यहां की प्रजा के लिये भी कुछ कर्तव्य पालन किया। एक बार यह बातें बड़ी धीरता से मन में विचारिये। आपकी भारत में स्थिति की अवधि के पांच वर्ष पूरे हो गये। अब यदि आप कुछ दिन रहेंगे तो सूद में, मूल धन समाप्त हो चुका। हिसाब कीजिये, नुमायशी कामों के सिवा काम की बात आप कौन सी कर चले और भड़क बाजी और सिवा ड्यूटी और कर्तव्य की और आपका इस देश में कब ध्यान रहा है। इस बार के बजट ही की वक्तृता ही आपके कर्तव्य की अंतिम वक्तृता थी। जरा उसे तो पढ़ जाइये। फिर उसमें आपकी पांच साल की किस अच्छी करतूत का वर्णन है? आप जारम्बार अपने दो अति तुमतारक से भरे कामों का वर्णन करते हैं। एक विक्टोरिया हाल और दूसरा दिल्ली दरबार का। पर जरा सोचिये तो यह काम दोनों तो शो हुए

या ड्यूटी? विक्टोरिया मैमोरियल हाल चन्द पेट भरे अमीरों के एक दो बार देख आने की चीज होगी। उससे दरिद्रों का कुछ दुख घट जायेगा या भारतीय प्रजा की दशा कुछ उन्नत हो जायेगी? चिट्ठी में गुप्त जी ने दरबार का वर्णन करते हुए लिखा है- अब दरबार की बात सुनिये कि क्या था। आपके ख्याल से वह बहुत बड़ी चीज थी पर भारतवासियों की दृष्टि से वह बुलबुलों के स्वप्न से बढ़कर कुछ न था। जहां-जहां से वह जुलूस के हाथी आये, वहीं वहीं लौट गये। जिस हाथी पर आप सुनहरी झूलें और सोने का हौदा लगवा कर छत्र धारणापूर्वक सवार हुए थे, वह अपने कीमती असबाब सहित जिसका था उसके पास चला गया। आप भी जानते थे कि वह आपका नहीं और दर्शक भी जानते थे कि आपका नहीं। दरबार में जिस सुनहरी सिंहासन पर विराजमान होकर आपने भारत के सब राज-महाराजाओं की सलामी ली थी, वह भी वहीं तक था और आप स्वयं भली-भांति जानते हैं कि वह आपका न था। वह भी जहां से आया चला गया। यह सब चीजें खाली नुमाइशी थीं। भारतवर्ष में वह पहले से ही मौजूद थी। क्या इन सबमें आपका गुण प्रकट हुआ? लोग विक्रम को याद करते हैं या उसके सिंहासन को? अकबर को या उसके तख्त को? शाहजहां की इज्जत उसके गुणों से थी या उसके तख्ते ताउस से? आप जैसे बुद्धिमान के लिये यह सब बातें विचारने की हैं।

दरबार समाप्त होते ही वह दरबार भवन, वह एम्फीथियेटर तोड़कर रख देने की वस्तु हो गया। उधर बनाना, इधर उखाड़ना पड़ा। नुमायशी चीजों का यही परिणाम है। उसका तितलियों सा जीवन होता है। माई लार्ड। आपने कछाड़ के चाय वाले साहबों की तरह दावत खाकर कहा था कि यह लोग नित्य यहां है और हम लोग कुछ दिन के लिये आपके कुछ दिन बीत गये। अवधि पूरी हो गई। अब यदि कुछ दिन और मिले, तो वह किसी पुराने पुण्य के बल से समझिये। उन्हीं की आशा पर शिवशम्भु शर्मा यह चिट्ठा आपके पास भेज रहा है, आपको अपने कर्तव्य का ख्याल हो। जैसे लिबरल वैसे टोरी। जैसा नाला वैसी मोरी।

लखनऊ की उर्दू डिफेंस सेंट्रल कमेटी की ओर से मई 1900 में एक अर्जी सरकार को दी गई, जिसमें नागरी के विरोध में पांच अनर्गल बातें कही गयी थीं। इस अनर्गल और गलत आरोप का उत्तर गुप्त जी ने तत्काल भारत मित्र में दिया।

लखनऊ का उर्दू पत्र पंच हिन्दी विरोधी कविता एवं लेख प्रकाशित

करता था। 27 मई सन् 1900 को उर्दू की अपील नाम एक कविता उक्त पत्र में प्रकाशित हुई। इस कविता में उर्दू को एक विपदाग्रस्त, निराश्रय, पति परित्यक्ता नायिका के रूप में चित्रित किया गया था। हिन्दी को उसकी सौत बताकर वायसराय से अपील की गई कि वे इस परित्यक्ता, सुंदर और आकर्षक स्त्री (उर्दू) से अनुराग करें और गंवार, देशी तथा असुंदर हिन्दी नायिका को त्यागें। गुप्त जी ने इस कविता के उत्तर में उसी शैली में व्यंग्यात्मक कविता 28 मई सन् 1900 को उर्दू को उत्तर भारत मित्र में छापी।

यहां आई हा आंखें नीची करो, मटकने चटकने पर अब मत मरो।
यहां पर न झांझों को झनकाइये, दुपट्टे को हरगिज न खिसकाइये।
न कलियों की जहां दिखाओ बहार, कभी या पे चलिये न सीना उभार।
यह सब काम कोठे पे अपने करो, यहां तो अदब कही को सिर पर धरो।

गुप्त जी के लेखों से प्रभावित होकर हैदराबाद के प्रधानामात्य महाराजा सर कृष्णप्रसाद ने (जो स्वयं उर्दू के कवि और लेखक थे) गुप्त जी से मिलने की उत्सुकता प्रकट की। गुप्त जी के मित्र दीनदयाल शर्मा ने सर कृष्ण प्रसाद के निर्देशानुसार उन्हें हैदराबाद आने को लिखा। गुप्त जी ने उत्तर में लिखा कि मेरे भारत-मित्र को दो रुपये वार्षिक देकर जो ग्राहक पढ़ता है, वही मेरे लिए महाराजा कृष्णप्रसाद है। यदि महाराजा कृष्णप्रसाद ने मुझे जानना है कि मैं क्या हूं तो उनसे कहिये कि 2 रुपये वार्षिक भेजकर भारत मित्र के ग्राहक बनें और उसे पढ़ा करें। मुझे आने का अवकाश नहीं है। यह छोटा सा उदाहरण है, उनके बेलाग स्वभाव का स्वाभिमान का, जो आज के सम्पादकों को ढूंढने पर भी दिखाई नहीं देता।

हरियाणा प्रदेश के इस यशस्वी स्वाभिमानी दिवंगत पत्रकार पर हमें गर्व और उन्हें नमन है।

-देवव्रत वशिष्ठ
चेतना सदन, लोहारू रोड, भिवानी-127021

ज्ञानमूर्ति - डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल इस शताब्दी के अग्रणी वैदिक विद्वानों में से एक थे। उन्होंने वैदिक व पौराणिक साहित्य के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ पुरातत्व एवं कला के क्षेत्र में जो अनूठा कार्य किया, वह सदैव अविस्मरणीय रहेगा। उन्होंने महाभारत, गीता एवं पुराणों की सांस्कृतिक मीमांसा कर यह सिद्ध किया कि हमारे महान धर्मशास्त्र पूरी तरह इतिहास तथा विज्ञान पर आधारित हैं। भारतीय संस्कृति की शाश्वतता को संसार में कोई भी चुनौती नहीं दे सकता। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन ही धर्म, संस्कृति, भारतीय धर्मशास्त्रों तथा जनपदीय साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिये समर्पित किया हुआ था।

इस महान विभूति का जन्म पिलखुवा (गाजियाबाद) क्षेत्र के छोटे से गांव खेड़ा में 7 अगस्त 1904 को गांव के जमींदार लाला झब्बामल के पौत्र के रूप में हुआ था। उन्हें बचपन से ही अपने दादा लाला झब्बामल तथा दादी से धार्मिक संस्कार मिले। दादा उनकी अंगुली पकड़कर गांव के बाहर स्थित शिव मंदिर ले जाते तथा उन्हें भगवान शंकर को प्रणाम करने तथा उनके समक्ष दीप जलाने की प्रेरणा देते। दादा स्वयं श्रीमद्भागवत के श्रवण में रुचि रखते थे। वे स्वयं भी अपने मित्रों को भागवत की रोचक कहानियां सुनाकर प्रभु भक्ति की प्रेरणा दिया करते थे। उन्होंने अपने पौत्र को प्रतिदिन भगवान शिव का दर्शन करने तथा विष्णु सहस्त्रनाम का पाठ करने की प्रेरणा दी।

उनके पिता लाला गोपीनाथ जी लखनऊ की नगरपालिका में ओवरसियर पद पर नियुक्त हुए तो उन्होंने अपने पुत्र को लखनऊ बुला लिया तथा वहां के अमीनाबाद हाई स्कूल में दाखिला दिला दिया। वे छठी कक्षा के छात्र थे कि उनका कवित्व जाग उठा तथा उन्होंने गांव पर एक कविता लिखकर सभी को आश्चर्यचकित कर डाला था।

वासुदेवशरण को बचपन से ही धार्मिक वाङ्मय का अध्ययन करने के

लिये संस्कृत भाषा में विशेष रुचि थी। उनकी रुचि को देखते हुए पिता ने लखनऊ में संस्कृत का अध्यापन करने वाले पंडित जगन्नाथ जी को उन्हें संस्कृत पढ़ाने का कार्यभार सौंप दिया। चार-पांच वर्ष में ही वासुदेवशरण जी संस्कृत भाषा के महान ज्ञाता हो गये।

असहयोग आंदोलन में सक्रिय

सन् 1921 के दिन थे। महात्मा गांधी के आह्वान पर पूरे देश में असहयोग आंदोलन की लहर दौड़ रही थी। लखनऊ के विद्यालय में अध्ययनरत वासुदेवशरण भी इस आह्वान से अछूते नहीं रहे। उन्होंने अपने विदेशी वस्त्र उतार दिये तथा खादी पहनने का दृढ़ संकल्प ले लिया। इतना ही नहीं उन्होंने विद्यालय भी छोड़ दिया।

लखनऊ में उन दिनों श्री चन्द्रभानु गुप्त कांग्रेस के ओजस्वी तथा तेजस्वी युवा कार्यकर्ता थे। वासुदेवशरण ने उनके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर असहयोग आंदोलन के प्रचार में भाग लिया।

वासुदेवशरण जी के पूरे परिवार ने स्वदेशी का व्रत लिया था। उन्हीं दिनों स्वदेशी अभियान के दौरान 1922 में उनके भाई श्री कृष्ण मुरारी का जन्म हुआ था- उन्हें खद्दर बाबू नाम से पुकारा जाने लगा।

उन्होंने असहयोग आंदोलन के कारण विद्यालय छोड़ दिया था। फिर भी वे घर पर ही संस्कृत, साहित्य तथा संस्कृति से संबंधित ग्रंथों का अध्ययन करते रहे।

महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी महाराज इस प्रतिभाशाली युवक से आकृष्ट हुए तथा उन्होंने लखनऊ से काशी बुलाकर उन्हें हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश दिला दिया।

सन् 1923 में विद्याध्ययन के दौरान ही उनका विवाह गाजियाबाद के प्रमुख हिन्दू महासभाई नेता लाला हरचरणदास अग्रवाल की सुपुत्री विद्यावती देवी के साथ कर दिया गया। सन् 1927 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से उन्होंने प्रथम श्रेणी में बी.ए. की उपाधि प्राप्त की। उस समय महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी महाराज ने उनकी पीठ थपथपाते हुए आशीर्वाद दिया था। तुम धर्म तथा संस्कृत की सेवा के लिये हमेशा समर्पित रहोगे।

साईमन कमीशन का विरोध

सन् 1927 में वे काशी से लखनऊ से वापस लौट आए तथा लखनऊ

विश्वविद्यालय में एमएएलएलबी में दाखिला ले लिया। उन्होंने प्रख्यात इतिहासकार डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी के श्री चरणों में बैठकर गहन अध्ययन किया।

उन्हीं दिनों साईमन कमीशन भारत आया तो जगह-जगह उसका विरोध किया गया। वासुदेवशरण जी ने भी साइमन-वापस जाओ के नारे लगाते हुए इस विरोध प्रदर्शन में भाग लिया।

डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी की प्रेरणा पर उन्होंने वकालत न करके पुरातत्व विभाग में कार्य करना स्वीकार किया। 1931 में वे मथुरा संग्रहालय में कार्यरत हुए। उन्होंने वहीं रहकर ब्रज की प्राचीन संस्कृति, मूर्तिकला तथा अन्य प्राच्य ग्रंथों का अध्ययन- संग्रह किया। वे मथुरा में ब्रज साहित्य के मर्मज्ञ बाबू वृन्दावनदास जैसी विभूतियों के संपर्क में भी आए। उन्होंने इस दौरान वेदविद्या विषय पर अपनी पहली पुस्तक उरू ज्योति का सृजन किया।

अनेक ग्रन्थों का सृजन

दिल्ली में राष्ट्रपति भवन के कक्ष में राष्ट्रीय पुरातन संग्राहलय की स्थापना की गई तो उसका कार्यभार डॉ. वासुदेवशरण जी को सौंपा गया। 1946 से 1951 तक वे दिल्ली रहे। इसी दौरान उन्होंने भारत सावित्री, मार्कण्डेय पुराण- एक सांस्कृतिक अध्ययन, हर्ष चरित्र एक सांस्कृतिक अध्ययन, कादम्बरी- एक सांस्कृतिक अध्ययन, पदमावत संजीवनी व्याख्या, शिव महादेव, द ग्रेट गॉड, पाणिनी कालीन, भारतवर्ष, मत्स्य पुराण- एस्टडी, वामन-पुराण- ए स्टडी गीता नवनीत, उपनिषद् नवनीत, वेद रश्मि जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथों का सृजन किया। बाद में उनके निबन्धों के दर्जनों संग्रह प्रकाशित हुए जिनमें कल्पवृक्ष, वेदविद्या, उरु ज्योति, मातृभूमि, भारत की मौलिक एकता, प्राचीन भारतीय लोक धर्म आदि बहुत लोकप्रिय हुए।

वासुदेवशरण जी की विद्वत्ता से राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद तथा पं. जवाहरलाल नेहरू भी बहुत प्रभावित थे। राजेन्द्र बाबू ने तो कई बार उन्हें राष्ट्रपति भवन में आमंत्रित कर उनसे वेदों तथा उपनिषदों के महत्व पर चर्चा की थी। प्रख्यात वैदिक विद्वान पंडित मोतीलाल शास्त्री (जयपुर) के साथ एक बार उन्होंने राष्ट्रपति भवन में वेदों के महत्व पर प्रवचन किया था जिसे सुनकर राजेन्द्र बाबू ने कहा था- डॉ. वासुदेवशरण ज्ञान की साक्षात गंगोत्री है। डॉ. वासुदेवशरण जी संस्कृत तथा हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी के भी महान विद्वान थे। इसके बावजूद वे स्वतंत्र भारत में भी अंग्रेजी भाषा लादे जाने को शर्मनाक मानते थे।

सन् 1962 में राजभाषा विधेयक की आड़ में अंग्रेजी लादे रखने की साजिश की गई तो उन्होंने इसका प्रबल विरोध डॉ. रघुवीर तथा डॉ. राममनोहर लोहिया के साथ मिलकर किया था। स्वदेशी, गौरक्षा, राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा भारतीयता की भावना के वे मूर्तिमान स्वरूप थे। उनका स्पष्ट मत था- भारत की पहचान तथा विशेषता यहां के धर्मशास्त्रों, वेद-उपनिषद, गीता, रामायण, पुराणों, गंगा, गाय गायत्री आदि के कारण ही है। संस्कृत भाषा हमारी संस्कृति की संवाहक है। इसकी उपेक्षा भारतीय संस्कृति के अस्तित्व के लिये खतरा होगी। अंग्रेजी भाषा, विदेशी रहन-सहन तथा पश्चिमी देशों की विकृतियों का अन्धानुकरण हमारे लिये आगे चलकर बहुत घातक सिद्ध होगा। डॉक्टर साहब अध्ययन, मनन तथा लेखन में इतने तल्लीन रहते थे कि कभी उन्होंने अपने स्वास्थ्य की ओर ही ध्यान ही नहीं दिया। मधुमेह (डायबिटीज) के कारण उनका शरीर रोगों से घिर गया था। चिकित्सक उन्हें पूर्ण विश्राम की सलाह देते थे किन्तु वे ज्ञान गंगा को अपनी लेखनी के माध्यम से प्रवाहित करने में ही लगे रहते थे।

डॉक्टर साहब भगवान देवाधिदेव महादेव जी के अनन्य भक्त थे। गायत्री तथा शिव स्तोत्र का नियमित पाठ करते थे। एक बार उन्होंने मेरे पिताश्री (स्व. भक्त रामशरणदास जी) को पत्र में लिखा था- मैंने जीवन का यह निष्कर्ष निकाला है कि उस मानव का जीवन निरर्थक है जिसने अपने पूर्वजों की संस्कृति, धर्म तथा राष्ट्रहित के लिये कुछ नहीं किया। भगवान की भक्ति मानव जीवन का प्रथम लक्ष्य होना चाहिए।

और 26 जुलाई सन् 1966 को वे भगवान शिव की पावन नगरी काशी में ज्ञान यज्ञ में अंतिम आहुति देते-देते भगवान शिव के लोक को प्रस्थान कर गये। यह संतोष की बात है कि उनके अनुज श्री कृष्ण मुरारी अग्रवाल डॉक्टर साहब के साहित्य का प्रकाशन कर उनकी स्मृति बनाये रखने में प्रयत्नशील हैं।

सादा जीवन उच्च विचार

डॉ. वासुदेवशरण जी ने जीवन में सादगी को प्राथमिकता दी थी। शुद्ध खादी में उनका रोम-रोम बसता था। शुद्ध खादी का कुर्ता-बनियान, धोती-टोपी- यही उनका पहनावा था। उनके बिस्तर के सब कपड़े शुद्ध खादी के होते थे। जिस तख्त पर बैठकर या लेटकर वे अध्ययन करते थे - दरी, गद्दा, तकिया, बैडशीट- सभी शुद्ध खादी की होती थी। उनके अध्ययन के कमरे में पड़ा सोफा, पर्दे सभी शुद्ध खादी के थे। माताजी (उनकी धर्मपत्नी) ने भी सादा जीवन पर्यन्त

शुद्ध खादी के ही कपड़े पहने। उनकी सुपुत्री सुदक्षणा भी सदा शुद्ध खादी के कपड़े पहनती थी। जहां तक मुझे याद है उनके सभी पुत्र शुद्ध खादी को ही प्राथमिकता देते थे। मैं उन दिनों बनारस में पढ़ता था। उस दौरान उनके सान्निध्य में रहने का सौभाग्य मिलता था। मुझे उनके यहां भोजन करने का अनेकों बार अवसर मिला। खाना अत्यन्त स्वादिष्ट होता था। खाने में माताजी उनका बहुत ख्याली रखती थी। उन्हें दूध में छेना पकाकर खाना बड़ा अमृत तुल्य लगता था। प्रख्यात कलामर्मज्ञ डॉ. रायकृष्णदास, उनके पुत्र, पुत्रवधू प्राय: उनसे मिलने आते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के वंशज जो कि कला के क्षेत्र में प्रकाण्ड विद्वान थे तथा विश्वविद्यालय में भी कुलपति से नीचे का स्थान प्राप्त था, सप्ताह में दो-तीन बार साहित्यिक चर्चा करने आते थे। प्रात: से सायं तक एमए और पीएचडी के छात्र उसे मार्गदर्शन के लिये आते रहते थे। याददाश्त इतनी कमाल की कि छात्रों से कहते थे अमुक रैक में से अमुक स्थान से अमुक पुस्तक निकालकर- अमुक स्थान पर क्या लिखा है। पढ़ो और नोट करो।

डायबिटिज के कारण उनकी दृष्टि क्षीण हो गई थी। 4-6 शोध छात्र तथा एक टाइपिस्ट उनके पास बैठे रहते थे। सबसे संदर्भ पुस्तकों से सुनते थे तथा सीधे बोलकर टाइप करवाते थे। अपने बोले को कभी दोबारा सुना नहीं और टाइप की गई सामग्री सीधी प्रेस में जाती थी और वहां से मुद्रण होकर आती थी। मृत्यु से 2-3 दिन पूर्व सर सुंदरलाल चिकितसालय में प्राइवेट वार्ड में शाम को जब मैं उनके साथ अकेला बैठा था उन्हें अपनी मृत्यु का अहसास हो गया था। बोले जानकी ऐसा ज्ञान गंगा मस्तिष्क में प्रवाहित हो रही है कि जाने क्या क्या लिखवा दूं लेकिन समय बहुत थोड़ा है अधिक बोलने पर थक जाता हूं। यहां मैं यह बता दूं कि अस्पताल में भर्ती के दौरान उनके चिकित्सक इंचार्ज डॉ. बाजपेयी जी ने उन्हें लिखने की विशेष अनुमति दे रखी थी। एक टाइपिस्ट हर समय उनके पास रहता था। जब भी वे सुविधा समझते, बहुत मना करने के बावजूद वे कुछ न कुछ टाईप करवाते रहते थे। मृत्यु से पूर्व रात्रि को मैं उन्हें ठीक छोड़कर आया था। प्रात: 4 बजे उनके छोटे पुत्र कुबेर ने उनके शरीर पूरा होने की सूचना दी। उनके पिताजी तथा परिवार के अन्य सदस्यों ने लखनऊ में हैवेट रोड पर वैश्य बैंक की स्थापना की थी, जो घाटे में चला गया। उसका ऋण उन्होंने मृत्यु से 1 वर्ष पूर्व तक उतारा। ऋण मुक्ति के बाद ही घर में गोदरेज का फ्रिज आया। सन् 1965 में मेरे बाबा लाला श्रीराम अग्रवाल पिलखुवा में बनारस

मेरे पास अए थे। तब मैं उन्हें डॉ. साहब से मिलवाने ले गया था। डॉ. साहब ने उनसे कहा- गांव खेड़ा में हमारा जो पैतृक मकान है उसकी मरम्मत करवा दीजिए तथा पुताई वगैरह करवा दीजिए। साथ ही उन्होंने 3000 रुपये का चैक काट कर दे दिया। बाबाजी ने खेड़े के मकान की मरम्मत आदि करवाई, पुताई करवाई तथा जो बाकी धन बचा, ड्राफ्ट द्वारा वापिस भेज दिया। बड़ा मन प्रसन्न हुआ था डॉ. साहब का। अपने पूर्वजों के प्रति उनका आखिरी श्राद्ध था। मैंने उन्हें कभी क्रोधित होते नहीं देखा- सदा मुस्कुराते रहते थे। बैठे हुए बोलते हुए एक मनीषी लगते थे। मैंने उनके पुस्तकालय से बड़ा कोई निजी पुस्तकालय आज तक नहीं देखा। विशाल कमरा, गैलरी, बरान्डा, जीना अन्य कमरेसब पुस्तकों से भरे रहते थे।

- शिव कुमार गोयल

श्रीमती पार्वती देवी डीडवानिया

श्रीमती पार्वती देवी उन स्त्री रत्नों में से है जिन्होंने राजस्थान के पूर्व गौरव को सुरक्षित रख उसके प्राचीन आदर्शों का एक उज्जवल उदाहरण सामने रखा है। इनका जन्म बंगाल प्रांत में रानीगंज के एक प्रसिद्ध मारवाड़ी वैश्य कुल में हुआ था। आपके पितामह सुप्रसिद्ध सेठ जगन्नाथ जी झुंझुनूवाला उदार विचारों के मनुष्य थे। लोकोपकारक कार्यों की ओर आपका विशेष उत्साह रहता था। सेठ जी को उस समय से ही ऐसे कार्यों से दिलचस्पी थी जबकि जनता सुधारों की ओर शंकित दृष्टि से देखती थी। इसी के फलस्वरूप सेठ जी ने रानी गञ्ज में सावित्री कन्या पाठशाला नामक बालिकाओं की एक अच्छी माठशाला खुलवाई। पार्वती देवी को विद्यारंभ कगने का गौरव तथा श्रेय इसी पाठशाला को है। इस चतुर बालिका ने विद्या के साथ ही साथ अपने पितामह के विद्यालय के रूप में प्रकट हुए देशप्रेम तथा समाज सुधार की भावना को भी आत्मसात कर लिया।

आपके पिता का नाम सेठ ओंकारमल जी था। इनका देहान्त बहुत कम उम्र में ही हो गया। जिससे आपके परिवार को तथा रानी गंज की जनता को बहुत दुख हुआ।

वयस्का एवं सुशिक्षिता होने पर आपका विवाह भागलपुर के प्रसिद्ध रईस सेठ लक्ष्मीनाायण जी के पुत्र श्री युत चतुर्भुज जी डीडवानिया के साथ हुआ। प्राय: यह देखा जाता है कि जो बात होनहार होती है उसके लिये नित्य नये साधन भी जुटते चलते हैं। यही बात इस समय भी हुई। आप जिस देश प्रेम तथा जातीयता के वायुमण्डल में पलकर बड़ी हुई थीं, ईश्वर की कृपा से वही यहां भी प्रस्तुत हो गया। आपके पति एवं श्वसुर दोनों ही के विचार नवीन तथा समयानुकूल होने से आपको शिक्षा के साथ ही साथ ऐसे अवसर बराबर मिलने लगे जबकि

आपको सामयिक विषयों पर विचार परिवर्तन करना पड़ता था उच्च विचारों के मनुष्यों का सदा सर्वदा का संसर्ग एवं अपनी योग्यता को प्रकट करने के अवसर इन्हें बराबर मिलने लगे। योग्यता, देश प्रेम, समाज सुधारादि के बीज तो इनके जीवन में पहले ही से थे। अत: अनुकूल परिस्थितियों को पाकर वे अंकुरित होने लगे। उस अवस्था में सीखने के साथ ही साथ इन्हें कुछ सिखाने का अभ्यास करने के भी साधन मिलने लगे।

सन् 1923 में आपके पति भागलपुर से दिल्ली चले आए तबसे आपको अपने मामा देहली के मशहूर खेमका परिवार के साथ रहने का मौका मिला। यहां बहुत सी परिवार संबंधी विघ्न बाधाओं से मुक्त होकर इन्हें कार्य करने के और भी नवीन क्षेत्र मिले। मजदूरों की सच्ची दशा से परिचित मनुष्य जानते हैं कि उनके बीच कितनी बुराइयां, अशिक्षा आदि फैली हुई है। पार्वती देवी को भी इनका अनुभव हुआ। परंतु अन्य स्त्रियों की भांति उन्होंने केवल व्याख्यानों एवं विद्यालय का सहारा नहीं लिया। यदि सच पूछा जाये तो विचार और कर्म का सुंदर सामंजस्य ही इनके चरित्र का एक उज्जवलतम अंश है आज हम भारतीय समाज के सुधार क्षेत्र में जो बहुत से मनुष्यों को असफल होते देखते हैं, उनमें अधिकांश की असफलता का कारण यही होता है कि कुछ तो केवल बाग्बीर होते हैं तथा कर्म से उदासीन रहते हैं एवं कुछ सदा दूसरों के इशारों पर ही नाचते हैं। उनमें सदासद निर्णय करने की वृत्ति ही नहीं होती। परंतु पार्वती देवी ऐसे लोगों में अपवाद है। कर्म और विचार के इसी सामंजस्य को लेकर उन्होंने ग्वालियर में महिला शक्तिवर्द्धिनी सभा की स्थापना की तथा स्त्रियों के बीच फैली हुई बुराइयों को नष्ट करने का यथाशक्ति प्रयास करने लग गई। ये ही उसकी प्रथम मंत्रिणी रहीं तथा अथक प्रयास से कितने ही समय तक उसमें उत्साह का संचार कर उसके नाम को सफल बनाती रहीं। परंतु इसके साथ ही साथ समाचार-पत्रों का पठन, राजनीतिक तथा विचारपूर्ण साहित्य के मनन तथा सुधार प्रेमी एवं उदार दृष्टि पति के साहचर्य आदि में ये भविष्य का मार्ग बनाने लगीं। कुछ दिनों के उपरान्त पति के पुन: दिल्ली चले आने पर ये भी दिल्ली चली आईं। इस समय इनके पिता बिड़ला कॉटन मिल्स के मैनेजर थे, अत: इन्हें फिर मजदूरों के बीच कार्य करने का अवसर मिला। यहां भी इन्होंने मजदूरों की स्त्री तथा बालिकाओं में शिक्षा का प्रचार करने के लिये एक पाठशाला की स्थापना की जो आज भी अच्छी दशा में चल रही है। दिल्ली में आने पर जैसे-जैसे इन्हें

विस्तृत कार्यक्षेत्र मिलने लगा वैसे-वैसे ही ये अपनी संचित योग्यता का भी अधिकाधिक परिचय देने लगीं। समाज सुधार, शिक्षा, राजनीति आदि कोई भी विषय इनके कार्यक्षेत्र से अछूते नहीं बचे।

समाज सुधार के क्षेत्र में पर्दाप्रथा का निवारण, स्त्रियों को उनके आदर्शों एवं अधिकारों का ज्ञान कराना, अछूतोद्धार आदि सभी क्षेत्रों में आप प्रमुख भाग लेती रही हैं। दिल्ली में आप सर्वप्रथम मारवाड़ी महिला है जिन्होंने पर्दे की कुप्रथा को क्रियात्मक रूप से दूर किया है। अपनी इन सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप ही आप अग्रवाल महासभा की कार्यकारिणी की सदस्या निर्वाचित की गईं तथा लाहौर, भिवानी आदि कई स्थानों पर महिला कॉन्फ्रेंस की सभा नेत्री चुनी गईं। इन स्थानों पर आपके द्वारा दिए गए भाषणों में जिस प्रकार नारी जाति की वर्तमान दुर्दशा पर प्रकाश पड़ता है उसी प्रकार उनके वास्तविक महत्व को देखकर भी हृदय श्रद्धा एवं भक्ति से भर जाता है।

अछूतोद्धार के कार्य में भी आपने प्रशंसनीय भाग लिया है। हरिजनों के घरों तथा मोहल्लों में जा-जाकर इन्होंने उन्हें सफाई, सुप्रबंध तथा स्वास्थ्य के नियमों का जो पाठ पढ़ाया वह उनकी कार्य पद्धति पर अच्छा प्रकाश डालता है। आप देहली महिला अछूतोद्धार लीग की सभा ज्ञानेत्री तथा दिल्ली मेहतरसंघ की सदस्य रही। शिक्षा के क्षेत्र में भी आपने अच्छा कार्य किया। ग्वालियर की महिला शक्तिवर्द्धिनी सभा तथा दिल्ली स्थित बिरला कॉटन मिल्स की स्त्री शिक्षा संस्थाओं का उल्लेख हो चुका है। इसके अतिरिक्त किताबी शिक्षा के साथ ही साथ कला-कौशल की शिक्षा में भी आपका विशेष अनुराग था। दिल्ली के मदन-मोहन महिला शिल्प विद्यालय की आप सेक्रेटरी रही है तथा थोड़े से समय में ही इस विद्यालय ने जो उन्नति की है उसका बहुत कुछ श्रेय आपकी कार्य पटुता तथा प्रबंध कुशलता को है। दिल्ली के सुप्रसिद्ध सेठ श्रीयुत लक्ष्मीनारायण जी गाडोदिया की धर्मपत्नी श्रीमती सरस्वती देवी गाडोदिया ने जो विद्यालय खोला उसकी सेक्रेटरी भी आप रहीं।

कांग्रेस के क्षेत्र में भी पार्वती जी का नाम दिल्ली में एक आदर और श्रद्धा की वस्तु है। यों तो कांग्रेस का थोड़ा बहुत कार्य ये पहले से भी करती थीं, परंतु उसमें एक उन्मादिनी की भांति भाग इन्होंने सन् 1929 की लाहौर गत कांग्रेस से लौटकर ही लिया। उस समय इनकी जीवनचर्या को देखकर अच्छे-अच्छे को दांतों तले उंगली दबानी पड़ती थी। नारी के जीवन में कितनी शक्तियां, कितना

साहस और बल छिपा रहता है इसका आपने बहुत ही सुंदर प्रमाण दिया। विदेशी वस्त्र एवं शराब पर धरना देने का आयोजन करने में आपकी ख्याति हो गई। जिस निर्भयता, दृढ़ता एवं मनोयोग से आपने कांग्रेस में भाग लिया उसने दिल्ली के नारी समाज में उत्साह के एक समुद्र को तरंगित कर दिया। दिल्ली उत्तरी भारत में कपड़े की प्रमुख मंडियों में से एक है। अत: उस दिल्ली में ही प्रत्येक विदेशी धागे पर कांग्रेस की मोहर लगवा देने से बढ़कर आपकी कार्य कुशलता का दूसरा प्रमाण क्या हो सकता है।

सरकार द्वारा लगाई हुई धाराओं को ठुकराकर जिस समय आप दिल्ली के बाजारों में सिंहनी के समान गरज-गरज कर देश द्रोहियों तथा विश्वास घातियों को कायरता एवं भीरूता छोड़कर युद्ध क्षेत्र में आने के लिये ललकारती थीं उस समय एक अपूर्व ही दृश्य होता था। हृदय देशभक्ति की तरंगों से भर जाता था, उत्साह का एक बवण्डर सा आ जाता था। चांदनी चौक में घंटाघर के नीचे तथा कोतवाली के सामने लठैत पुलिस सिपाहियों की उपस्थिति में आपके जो दिल दहलाने वाले भाषण होते थे उन्होंने शत्रुऔर मित्र सबके हृदय में आपके लिये एक आदरपूर्ण स्थान सुरक्षित कर लिया। सार्वजनिक स्थानों में व्याख्यानों के अतिरिक्त इन्होंने नारी वर्ग में राजनीतिक जागृति फैलाने के लिये मोहल्लों में भी सभाओं तथा व्याख्यानों की आयोजना की। प्रत्येक दिन किसी न किसी मोहल्ले में आपके व्याख्यान होते ही रहते थे। अंत में सरकार भी इनकी सेवाओं की उपेक्षा अधिक समय तक न कर सकी। 14 अगस्त को आप गिरफ्तार कर ली गईं, और उसमें आपको छ: माह की सजा हुई। जेल से आने पर दिल्ली के नागरिक जीवन में इनका एक प्रमख स्थान हो गया। दिल्ली में समाज सुधार तथा देशहित संबंधी कोई ऐसी संस्था नहीं है जिससे इनका निकट का संबंध न हो। परंतु इतना होते हुए भी आपने प्रसिद्धि की ओट में व्यक्तिगत स्वार्थ का शिकार कभी नहीं खेला। जबलपुर में अग्रवाल महासभा का जो सोलहवां अधिवेशन हुआ था, उसके महिला विभाग की आप प्रेसिडेन्ट थीं। खद्दर से वेष्टित आकृति तथा वस्त्रों से निर्भयता, दृढ़ निश्चय, मनोबल एवं साहस की पूर्ति यह स्त्री वास्तव में राजस्थान का एक रत्न है। प्राचीन राजपूतनियों के आदर्शों की और स्त्री जाति को ले चलने की प्रबल उत्कंठा ही उनके जीवन का ध्येय है।

- रामगोपाल गुप्ता, नवलगढ़

अग्र समाज को समर्पित व्यक्तित्व

बाबू बसन्तलाल जी मुरारका

अग्रवाल समाज के अन्दर राष्ट्रीय और सामाजिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी सुधार करने वाले जिन गिने-चुने प्रतिभाशाली व्यक्तियों का नाम लिया जाता है उनमें कलकत्ते के बाबू बसन्त लाल जी मुरारका भी एक हैं। आप उन व्यक्तियों में से हैं जो अपने राष्ट्र की सेवा और अपने सिद्धान्त की रक्षा के लिये कई बार जेल गये, समाज के विरुद्ध वीरतापूर्वक विद्रोह का झण्डा उठाकर जाति बहिष्कृत भी हुए तथा और भी कई प्रकार के त्याग अपने जीवन में कर दिखाये। इस परिवार का मूल निवास स्थान सबसे पहले सीकर में और उसके पश्चात नवलगढ़ में रहा तथा इस समय मुकुन्दगढ़ में है। इस परिवार में आज से करीब डेढ़ सौ वर्ष पहले से नाथूराम जी हुए थे। ये इस वंश में बड़े प्रतापी व्यक्ति थे। सारी शेखावटी में इनका नाम बड़ा प्रसिद्ध था। सीकर के तत्कालीन राव जी इन्हें बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे। आप ही के नाम से यह परिवार देश में नाथूराम का नाम से भी प्रसिद्ध है। यही सेठ नाथूराम जी जब नवलगढ़ बसा तब सीकर से उठकर नवलगढ़ चले गये। आपके बनाये हुए कई विशाल कुएं अभी सीकर में विद्यमान हैं जो आपके पुत्र बिहारीदास जी के नाम से प्रसिद्ध हैं। बाबू बसन्तालाल जी का जन्म संवत 1947 में हुआ। आप इस परिवार में बड़े ओजस्वी और चमकते हुए व्यक्ति हैं। आपने शुरू-शुरू में श्री विशुद्धानंद विद्यालय में शिक्षा ग्रहण की। सन् 1913 में जब मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी की सहायक समिति के नाम से स्थापना हुई थी उस समय आप बाबू घनश्यामदास जी बिड़ला वगैरह प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साथ सेवा का कार्य करते थे। सन् 1916 में इसी समिति के प्रमुख व्यक्तियों की गिरफ्तारियां हुईं और सारे समाज में एक आतंक छा गया था। उसी समय बाबू बसन्तलाल जी ने ज्ञानवर्द्धिनी मित्र मण्डली की स्थापना की, सन् 1918 में यही संस्था बदलकर मारवाड़ी ट्रेडर्स एसोसिएशन के रूप में परिवर्तित हो गई। सन् 1919 में जब सेठ जमनालाल

जी बजाज ने अपने प्रयत्न से मारवाड़ी अग्रवाल महासभा की स्थापना की। उस समय बाबू बसन्तलाल जी भी इस सभा के प्रधान स्तम्भों में से एक थे। शुरू में इस महासभा की बंगाल प्रान्तीय ब्रांच के आप सचिव रहे। सन् 1919 के सत्याग्रह में आपने प्रमुख रूप से भाग लिया था। सन् 1920 में जब बड़ा बाजार कांग्रेस कमेटी की स्थापना हुई तब आप उसके सहकारी मंत्री बनाये गये। सन् 1921 के सुप्रसिद्ध सत्याग्रह संग्राम में भी आपने बड़े उत्साह से भाग लिया और उसी सिलसिले में डेढ़ वर्ष तक जेल में रहे। सन् 1925 में आप अखिल भारतीय मारवाड़ी अग्रवाल सभा के जनरल सेक्रेटरी चुने गये। सन् 1926 के कलकत्ता हिन्दू मुसलिम दंगे के समय में आपने हिन्दू रिलीफ सोसायटी की स्थापना कर आहत लोगों को बड़ी सहायता पहुंचाई।

सन् 1927 में मारवाड़ी अग्रवालों में सर्वप्रथम एक विधवा का विवाह हुआ जिसको लेकर समाज में भीषण क्रान्ति मची। उस समय बारह व्यक्ति समाज से बहिष्कृत कर दिये गये, उनमें से एक आप भी थे। सन् 1928 में आप ही ने प्रयत्न करके अखिल भारतीय राजस्थानी नवजीवन मण्डल की स्थापना की तथा आप उसके सेक्रेटरी चुने गये। इसी संस्था की तरफ से सन् 1929 में परदा निवारक दिवस मनाने के लिये एक डेप्यूटेशन निकला जिसमें बाबू बसन्तलाल जी, बाबू पदमराज जी जैन व बाबू नवलकिशोर जी भरतिया सपत्नीक सारे भारत के बड़े-बड़े शहरों में प्रचारार्थ गये, और वहां बड़ी-बड़ी सभाओं में आप लोगों के भाषण हुए। जिसका बहुत प्रभाव पड़ा। सन् 1930 में बड़ा बाजार सिविलडिस ओबिडियन्स कमेटी की स्थापना की गई उसके आप सेक्रेटरी बनाए गए, इसी सिलसिले में आपको एक वर्ष की सजा हुई। वहां से छूटने पर सन् 1931 में आपने विदेशी वस्त्र बहिष्कार कमेटी और मृतक भोज निवारक कमेटी की स्थापना की तथा आप इस कमेटी के सेक्रेटरी बनाए गए। इस कमेटी की तरफ से मृतक भोजों पर आपने जोरदार विरोध किया, जिसका अच्छा असर पड़ा। सन् 1932 में आप फिर दो महीने के लिये नजरबन्द किये गये और फिर पैरोल (रोजाना पुलिस में हाजिरी) का नोटिस देकर आप छोड़े गये, मगर उसका आपने पालन नहीं किया, जिसकेफलस्वरूप आपको फिर छः माह की सजा हुई। सन् 1833 में आप दलित हरिजन सोसायटी के सेक्रेटरी चुने गये, इस सोसायटी की तरफ से अभी 22 हरिजन पाठशालाएं चल रही हैं।

सन् 1935 में आप अखिल भारतीय अग्रवाल सभा के प्रयाग वाले

अधिवेशन के प्रेसिडेंट चुने गये तथा 1935 में जयपुर के नवयुवक सम्मेलन के रींगसवाले अधिवेशन के आप सभापति बनाए गए। इसी साल आप बंगाल राष्ट्रभाषा सम्मेलन के दिनाजपुर अधिवेशन के भी अध्यक्ष बनाए गए। इसी वर्ष आपने कलकते में पूर्बीय भारत हिन्दी प्रचार समिति की स्थापना की। इस समिति की तरफ से उड़ीसा प्रांत में हिन्दी प्रचार का काम चल रहा है। इसी वर्ष आपने कलकत्ते में मारवाड़ी विधवा विवाह सहायक सभा और मारवाड़ी परदा निवारक समिति स्थापना की। इसके सिवाय आप मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी, मारवाड़ी बालिका विद्यालय इत्यादि संस्थाओं के कार्यकारी सदस्य है। इस प्रकार आपके जीवन का बहुत सा समय समाजसेवा, देशसेवा और साहित्य सेवा के पवित्र कार्यों में जाता है। आपकी कार्यशक्ति की विशालता का पता इस से लग जाता है कि आप एक ही साथ अपने व्यापार का संचालन करते हुए भी कितनी ही सार्वजनिक संस्थाओं का संचालन करते हैं। आप कलकत्ता शेयर एण्ड स्टॉक एक्सचेंज के मैम्बर हैं तथा मेसर्स जी.डी. लोयलका में पार्टनर हैं। मुरारका एण्ड मोदी कंपनी के नाम से भी एक फर्म है जिसमें शेयर-बिजनेस होता है।

-गिलूराम मोदी, झुंझनूं

सेठ रामकृष्ण जी डालमिया

जीवन की गंभीर घुड़दौड़ में जो लोग महान कर्मवीर की तरह प्रविष्ट होकर महान विजय को प्राप्त करते हैं,संसार के अंदर तिनके के सहारे पर खड़े होकर जो लोग अपने बाहुबल से पहाड़ का निर्माण कर डालते हैं, कर्मक्षेत्र के अंदर जो लोग महान सम्पत्ति और वैभव को प्राप्त करके भी महान त्यागी और निष्काम योगी की तरह उससे बिल्कुल निस्पृह और निर्लिप्त रहकर त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत करते हैं ऐसे व्यक्ति संसार में बहुत ही कम होते हैं और ऐसे व्यक्तियों के जीवन एवं कार्यों का प्रभाव केवल समकालीन इतिहास पर ही नहीं वरन् भविष्य की संतानों के लिये भी उज्जवल तथा उच्च आदर्श प्रस्तुत करता है।

सेठ रामकृष्ण जी डालमिया का जीवन प्रवाह भी एक कर्मवीर योगी की रामकहानी है उसकी एक-एक पंक्ति, पतन, प्रतिघात, विजय, उल्लास और सफलता की घटनाओं से भरी हुई है। केवल आठ दस वर्षों के बीच में ही आपके द्वारा व्यापारिक और औद्योगिक जगत में दो महान कार्य सम्पादित हुए हैं। वे कर्मक्षेत्र में बढ़ने वाले प्रत्येक नवयुवक के लिये अत्यन्त उत्साहप्रदायक और आशाजनक हैं। सबसे बड़ी विशेषता आपके जीवन में यह है कि आपने अपने महान् आर्थिक कष्ट के दिनों में जिस शान्ति, संयम और विवेक का परिचय दिया, आज इस अटूट वैभव और सम्पत्ति के बीच में भी आप उसी शान्ति और संयम का परिचय दे रहे हैं। प्रत्यक्ष जीवन में हम प्राय: देखते हैं कि थोड़े से वैभव और थोड़ी सी विलास सामग्रियों के प्राप्त होते ही मनुष्य उनके पीछे मदोन्मत्त हो जाता है। विलास और वासना के उस प्रबल झोंके में वह इतना लिप्त हो जाता है कि अपने व्यक्तित्व को उसी में खो बैठता है। मगर सेठ रामकृष्ण जी का जीवन इससे बिल्कुल भिन्न है। आज इतनी सम्पत्ति, वैभव और विलास

सामग्रियों के बीच में रहते हुए भी उनका उनके प्रति कोई आकर्षण नहीं है। उनमें क्षणमात्र के लिये भी लिप्त होना उनके लिये असंभव है। लाखों की आमदनी और लाखों का खर्च होने पर भी उनके बदन पर तो वही खद्दर का कुर्ता और खद्दर की टोपी शोभित रहती है।उनका भोजन बिलकुल सादा और उनका व्यक्तिगत खर्चा बीस रुपये मासिक से कभी अधिक नहीं होता। कर्मयोगी की तरह वे दिन-रात काम करते हैं। काम के पीछे उन्हें खाने और सोने की भी परवाह नहीं रहती, इस काम की धुन में इन दिनों में उन्होंने अपने क्षेत्र इतनी अधिक सफलता प्राप्त करके दिखलाई है जो शायद इन कुछ वर्षों में दूसरे किसी भी मारवाड़ी ने न की होगी मगर इतनी बड़ी सफ़लता के परिणाम पर भी उन्हें किसी प्रकार का आकर्षण नहीं है, न तो वे इसमें किसी प्रकार लिप्त ही हुए और न इस बाढ़ में उन्होंने अपने अस्तित्व को ही खोया। इतने वैभव के बीच कामना के ऊपर विजय प्राप्त करने के ऐसे दृष्टान्त बिरले ही देखने में आते हैं। नीचे हम आपके जीवन का संक्षिप्त परिचय देते हैं जिससे पाठकों को मालूम होगा कि हमारे उपरोक्त कथन में कितना विचित्र सत्य भरा हुआ है।

जीवन का पूर्व परिचय

आपका जन्म संवत् 1950 में हुआ, आपका जीवन इतनी विचित्र घटनाओं से पूर्ण है जितना बहुत कम व्यक्तियों का होगा। आपके जीवन में अनेक घटनाएं ऐसी घटी हैं जिन्हें देखकर नास्तिक से नास्तिक हृदय में भी ईश्वर के प्रति विश्वास उत्पन्न हो सकता है। आप केवल बारह वर्ष की उम्र से ही अपने पिताजी के साथ व्यापारिक कार्यों में लग गये थे। आपकी शिक्षा बहुत साधारण हुई थी मगर पिताजी के सहवास से आपमें धार्मिक वृत्तियों का उदय हो गया था। इसी के फलस्वरूप केवल सत्रह वर्ष की उम्र में एक दफे तरंग उठते ही आप सन्यास लेने जगन्नाथपुरी बिना किसी से कहे सुने चले गये। बड़ी कठिनाई से ढूंढकर आपके पिताजी आपको वहां से लाये। जिस समय आपकी उम्र बीस साल की हुई उस समय आपके पिताजी का स्वर्गवास हो गया और उसके कुछ ही दिनों बाद आपकी व्यापारिक स्थिति एकदम बिगड़ गई। यहां तक कि खर्च की भी आपको तकलीफ होने लगी और पचासों हजार रुपयें का कर्ज हो गया। ऐसी भयंकर विपत्ति के समय में ईश्वर का स्मरण होना स्वाभाविक ही है। आप सवेरे से रात तक दिनभर ईश्वर को याद करते रहते थे। इन्हीं दिनों फतेहपुर के ज्योतिषी पं. मोतीलाल जी ने जो स्वयं राम के बड़े भक्त थे और बड़े-बड़े सम्पत्तिशाली

जिनके शिष्य थे- आपकी जन्मपत्री देखी और उसमें लिख दिया कि एक महीने पश्चात् इस व्यक्ति को एक लाख रुपया मिलना चाहिए। वह ऐसा समय था जबकि न तो आप एक पैसे का व्यापार ही करते थे और न आपका कोई विश्वास ही करता था। ऐसी स्थिति में उक्त ज्योतिषी जी का लिखना कैसे सत्य हो सकता है इस पर आपको बड़ा सन्देह था।

एक दिन अचानक आपके पास विलायत की कंपनी का एक तार आया, जिस कंपनी का तार आया था, उसके साथ पहले किसी समय में आपका व्यापारिक संबंध था। उस तार में उस कंपनी ने लिखा कि चांदी तेज होने वाली है। उस तार को लेकर आप कई बड़े-बड़े आदमियों के पास गये और उनसे कहा कि आप भी व्यापार कीजिये और मुझे भी कुछ करा दीजिए। मगर आपकी बात का किसी ने विश्वास नहीं किया। तब आप उस तार को लेकर उन्हीं ज्योतिषी पं. मोतीलाल जी के पास गये और उनसे उसी कंपनी के द्वारा चांदी खरीदने को कहा। उन्होंने 7500 पौंड चांदी अपने लिए खरीदने को कहा, उस समय आपके पास तार देने को भी रुपया नहीं था, बड़ी कठिनाई से किसी प्रकार आपने खरीदी का तार दिया। मगर दूसरे ही दिन उक्त पंडित जी ने आदमी भेजकर आपको चांदी खरीदनेसे इन्कार करवा दिया। फलस्वरूप चांदी का सौदा आप ही पर आ पड़ा। सौदा होते ही आपको उसमें तीन हजार का नुकसान दिखलाई देने लगा मगर आपने साहस करके वह सौदा खड़ा रहने दिया। धीरे-धीरे बाजार वापस सुधरने लगा और उसमें लाभ दिखलाई पड़ने लगा जिसके बल से आपने दूसरे कंपनी के मार्फत भी खरीदी करना प्रारंभ किया और इस व्यापार को क्रमशः बढ़ाते गये। इस प्रकार बढ़ाते-बढ़ाते पौने दो लाख पौंड चांदी आपके पोते हो गई। एक दिन जब सारे व्यापार में पचास हजार रुपया बढ़ने लगा, तब आपने कुछ रुपया निकालने का विचार किया और एक तरफ कुछ चांदी बिकवाकर दूसरी तरफ उतनी ही और खरीद ली। मगर ईश्वर की मर्जी, देवयोग से ऐसा हुआ कि जिसको बेचने का आर्डर दिया था वह तार उसके पास ठीक रूप में नहीं पहुंचा, मगर जिसको खरीदने का आर्डर दिया था वह तार ठीक रूप से पहुंच गया और वह सौदा पक्का हो गया, जिसके परिणामस्वरूप आपको साठ हजार की जगह डेढ़ लाख रुपया बढ़ने लगा।

37 वर्ष की अवस्था में आपने व्यापार से रिटायर होने की बात सोची, जिसके फलस्वरूप आप कुछ दिनों कश्मीर में रहे और उसके पश्चात दानापुर

कैण्टूनमेंट में एक कोठी बनाकर वहां रहने लगे। उस समय कांग्रेस इत्यादि उन्नतिशील संस्थाओं को आपने बहुत सहायतायें पहुंचाईं और अपने त्याग पूर्ण विचारों के कारण इस बात की कोशिश करते रहे कि वह किसी पर प्रकट न हो। करीब तीन बरस तक आप यहां निश्चिंततापूर्वक रहे।

औद्योगिक जगत में प्रवेश

इन्हीं दिनों भारतवर्ष में और विशेष कर बिहार प्रान्त में शक्कर के उद्योग ने बड़ा जोर पकड़ा। आपकी पारदर्शी बुद्धि ने भी गंभीरता के साथ शक्कर के उज्जवल भविष्य को देखा और आप तत्काल इस क्षेत्र में उतर पड़े। उतरते ही केवल एक मास के अंदर आपने साउथ विहार शुगर मिल्स लिमिटेड कंपनी की बीस लाख रुपये की पूंजी से स्थापना की। इस शुगर मिल की ऊख पेरने की क्रॉसिंग कैपेसिटी सोलह सौ टन की है। इस कंपनी के शुरू होते ही आपने एक और शुगर मिल खोलने की बात सोची और करीब बीस दिन में ही रोहतास शुगर मिल्स लिमिटेड के नाम से डेयरी ऑनसोन जंक्शन पर एक और मिल तीस लाख रुपये की पूंजी से प्रारंभ कर दी। इस मिल की क्रशिंग कैपेसिटी दो हजार टन प्रतिदिन है। यह मिल सारे भारत में दूसरे नंबर की है। ये दोनों मिल दो साल चलाने के बाद आपने महाराज बहादुर हथुवा से साढ़े 15 लाख रुपये में एक शुगर मिल और खरीदी जिसकी क्रशिंग कपेसिटी सोलह सौ टन प्रतिदिन है। कहने का तात्पर्य यह कि जिस प्रकार आपने व्यापार की दूसरी लाइनों में अपनी चमत्कारिक प्रतिभा का परिचय दिया उसी प्रकार औद्योगिक लाइन में भी आपने अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा का नमूना पेश कर दिया।

रोहतास इण्डस्ट्रीज

शुगर मिलों में सफलता प्राप्त करने के पश्चात आपका ध्यान दूसरे उद्योग धंधों और इण्डस्ट्रीज लिमिटेड कर दिया और इसकी पूंजी भी एक करोड़ रुपये कर दी। शुगर के व्यापार के पश्चात आपका ध्यान सीमेंट की ओर गया जो इस समय देश का सबसे अधिक उन्नतिशील उद्योग था तथा जिसकी ओर अभी तक भारतीय व्यापारियों का बहुत ही कम ध्यान गया था। इसी रोहतास इण्डस्ट्रीज के अंदर आप बहुत ही शीघ्र एक सीमेंट फैक्टरी कायम की। इस फैक्टरी की कैपेसिटी 500 टन सीमेंट रोजाना उत्पन्न करने की थी। इसके अलावा आप इसी इण्डस्ट्रीज के अण्डर में बीस टन रोजाना की कैपेसिटी वाली एक पेपर मिल भी खोला।

रोहतास इण्डस्ट्रीज के अंदर यहां के कर्मचारियों के लिये एक बहुत सुंदर कॉलोनी भी बसाई गई। जैसे-जैसे इस इण्डस्ट्रीज की उन्नति होती गई वैसे-वैसे यह कॉलोनी भी विशाल रूप धारण करती गई। इस कॉलोनी में स्टाफ के लिये शीघ्र ही एक हाई स्कूल भी स्थापित किया गया। इससे पता चलता है कि मजदूरों और कर्मचारियों के प्रति आपके हृदय में कितना सौहार्दभरा हुआ है और आप कितनी सहानुभूति के साथ उनकी तरक्की देखने के इच्छुक हैं। इस नवनिर्मित सुंदर नगरी (कॉलोनी) तथा उसके समीपवर्ती स्थान का नाम संस्करण डालमिया नगर किया गया।

उपरोक्त इण्डस्ट्रीज में गन्ने को नहर से लाने के लिये करीब एक लाख रुपया खर्च करके आपने एक रोप वे (रस्सी का रास्ता) बना दिया है। इस मार्ग से ऊपर ही ऊपर तार के द्वारा गाड़ियां बाहर से गन्ना ला-लाकर मिल में पहुंचा देती है। जल मार्ग से नहर के द्वारा गन्ना लाने के लिये आपके स्टीम वोट भी काम कर रहे हैं।

इसी मिल के गन्ना सप्लाई करने के लिये आपने सोन नदी के किनारे कई हजार एकड़ जमीन का एक प्लॉट लिया जिसमें मिल के लिये ऊख पैदा की जाती है। इस प्रकार क्रमशः यह इण्डस्ट्रीज अपनी सर्वांगीण उन्नति करने लगी।

भारत इंश्यूरेंस कंपनी

इंश्यूरेंस का कार्य भी आजकल के सबसे अधिक प्रगतिशील व्यापारों में एक प्रधान व्यापार है। इस व्यापार की ओर भी आपका ध्यान गया और आपने भारत इंश्यूरेंस कंपनी लाहौर के, कई लाख रुपयों के शेयर लाला हरकिशनलाल व दूसरे व्यक्तियों से खरीद लिये जिसके फलस्वरूप इस कंपनी की व्यवस्था का सारा संचालन आपके हाथों में आ गया। कई वर्षों से इस कंपनी की हालत बहुत बिगड़ गई थी मगर आपके हाथों में आते ही उसमें नवजीवन का संचार होना प्रारंभ हुआ और अब तो इसका स्थान भारत की प्रधान व्यापारिक कंपनियों में गिना जाता है। इस प्रकार इस व्यवसाय में भी आपको आश्चर्यजनक सफलता मिली।

सीमेंट कंपनी

जब आपने देखा कि बम्बई की एक कंपनी ने भारत की तमाम सीमेंट कंपनियों को खरीद कर सीमेंट की मोनोपली करने का विचार किया है, तब आपने सोचा कि इससे सीमेंट का उपयोग करने वाली जनता को बड़ी असुविधा

होगी। तब आपने बड़े पैमाने पर इस व्यापार में हाथ डालने का निश्चय किया और भारत के विभिन्न स्थानों पर सीमेंट फैक्टिरियां खोलने के लिये पांच करोड़ रुपये की पूंजी से एक लिमिटेड कंपनी स्थापित की है जिसकी फैक्टरियां करांची, लाहोर, दिल्ली, सेंट्रल इण्डिया आसाम इत्यादि स्थानों में बन रही है। इस कंपनी के डायरेक्टर भारत और यूरोप के बड़े गणमान्य व्यक्ति हैं और इसका उद्देश्य स्वल्प मूल्य में सीमेंट तैयार करके जनता के अंदर उसका प्रचार करना है।

इस प्रकार अत्यन्त साधारण स्थिति से उठकर अपनी कर्मवीरता से आपने भिन्न-भिन्न लाइनों में अपने व्यक्तित्व का प्रकाश फैलाया और आज के दिन तो अग्रवाल समाज के प्रगतिशील उद्योग-व्यवसासियों में शायद आप सबसे प्रथम व्यक्ति है जो इतनी शीघ्रता से उन्नति की ओर बढ़ते चले गये।

सामाजिक जीवन

अत्यन्त धार्मिक और ईश्वरभक्त पुरुष होते हुए भी सामाजिक दृष्टि से आपके विचार बहुत उदार और सुधरे हुए हैं। भारत वर्ष की एकमात्र संस्था कांग्रेस के प्रति आपकी हार्दिक सहानुभूति रही। आपने अपने घर में से परदा सिस्टम के समान अनेक कुप्रथाओं का बहिष्कार कर दिया।

सेठरामकृष्ण जी की ज्ञान-पिपासाअत्यन्त विलक्षण है। बिना किसी विद्यालय में शिक्षा पाये हुए केवल अपने अध्यावसाय से इन्होंने अनेक भाषाओं में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। हिन्दी का तो कहना ही क्या- अंग्रेजी, गुजराती और बंगला के उच्च साहित्य का भी आपने परिशीलन किया। आपने पौर्वात्य तथा पाश्चात्य दार्शनिक एवं आध्यात्मिक ग्रंथों का सम्यक् अध्ययन किया। वेदान्त, गीता तथा भागवत जैसे गूढ़ रहस्य ग्रंथों के आप अच्छे ज्ञाता है। स्वामी राम तीर्थके वेदान्त संबंधी ग्रंथों का आपके जीवन पर भारी प्रभाव पड़ा है और आप उन ग्रंथों के बड़े प्रेमी हैं। कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ टैगोर महोदय ने आपके लिये एक बार कहा था कि मुझे आश्चर्य है कि ऐसा भावुक हृदय रखने वाला पुरुष कैसे इतना व्यवहार कुशल हो सकता है।

सार्वजनिक और शिक्षा संबंधी कार्यों की ओर आपकी इतनी अधिक रुचि थी कि आप करीब अपनी आमदनी का आधा हिस्सा इन कार्यों में खर्च कर देते। हिन्दू युनिवर्सिटी, शांति निकेतन, पटना युनवर्सिटी, मारवाड़ी एसोसिएशन, गीता प्रेस इत्यादि संस्थाओं को आपने बहुत महत्वपूर्ण सहायताएं पहुंचाई हैं। मगर आपकी यह देनगी इतनी गुप्त होती है कि दाहिने हाथ की खबर बायें हाथ

को लगना भी कठिन है। आपने एक लाख रुपये का एक ट्रस्ट कायम किया है जिससे उच्च श्रेणीके विद्यार्थियों को स्कॉलरशिपें दी जाती हैं। इसी प्रकार के और भी कार्यों में आप हजारों रुपया मासिक खर्च करते रहे।

अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा के अधिवेशन के आप सभापति मनोनीत हो चुके हैं।

स्व. सेठ रामनारायण जी जे.पी. मुम्बई

मनुष्य जीवन विधाता की सृष्टि का सर्वोत्कृष्ट नमूना है। उसके अंतर्गत अनेक दिव्य शक्तियां और महान गुण भरे रहते हैं। मगर ऐसे भाग्यशाली लोग संसार में बहुत ही कम होते हैं जो अपने में छिपे हुए महान गुणों का विकास कर उज्वल चांदनी की तरह संसार में अपनी प्रतिभा का प्रकाश फैलाने में सफल हो सकते हैं। ऐसे भाग्यशाली पुरुषों से सारा समाज लाभ उठाता है और इतिहास बड़े ही आदर से अपने सुनहरी पृष्ठों में ऐसे महानुभावों के नामों को स्थान प्रदान करता है।

हमारे चरित्र नायक सेठ रामनारायण जी रुइया भी ऐसे ही सौभाग्यशाली पुरुषों में से एक थे। उनका जीवन सफल और दिव्य जीवन् का एक सुंदर नमूना था। व्यापार के अंदर कुशलता प्राप्त करके संसार में धन को प्राप्त करना बहुत कठिन है,उसमें भी अपनी मानवोचित वृत्तियों को कायम रखते हुए व्यवसायिक सफलता को प्राप्त करना और भी कठिन है फिर व्यवसाय में प्राप्त किये हुए द्रव्य को सद्व्यय में सारासार विवेक के साथ खर्च करना और भी कठिन है और इन सबसे कठिन है, इतनी सफलताओं के प्राप्त होने के पश्चात भी बिल्कुल निराभिमान और उच्च सेवा की भावनाओं से युक्त निर्मल, हृदय का बना रहना। ऐसे उदाहरण प्रत्यक्ष जीवन में बहुत कम पाये जाते हैं। हमें लिखते हुए बड़ी प्रसन्नता होती है कि सेठ रामनारायणजी रूइया भी ऐसे ही व्यक्तियों में से एक थे।

सेठ रामनारायण जी का जन्म सम्वत् 1820 की श्रावण सुदी 8 को रामगढ़ में हुआ। बचपन से ही आप बड़े तेजस्वी और प्रतिभाशाली बालक दिखलाई देते थे। आपको देखने वाले व्यक्तियों के हृदय में स्वभावतया यह कल्पना बलवती हो जाया करती थी कि वयस्क होने पर आप एक विशेष चमकने वाले पुरुष होंगे- तथा अपने परिवार के नाम को विशेष समुज्जवल

करेंगे। इस प्रकार आपका बाल्य जीवन रामगढ़ में ही व्यतीत हुआ।

व्यापारिक विकास

सेठ रामनारायण जी केवल 15 साल की उम्र में ही देश से अपनी इंदौर दुकान पर आये और वहां आकर अपने पिताजी के संरक्षण में व्यवसाय का ज्ञान प्राप्त करने लगे। केवल दो ही वर्षों में आपने व्यवसाय में काफी दक्षता प्राप्त कर ली। इसके कुछ समय पश्चात आप बम्बई आये और एक वर्ष तक आपने अपने ताऊ सेठ हरमुखराय जी के पास व्यापारिक अनुभव प्राप्त किया। ज्यों ज्यों आपकी उम्र बढ़ रही थी त्यों त्यों आपकी प्रतिभा का प्रकाश चारों ओर छिटकता हुआ चला जा रहा था। आपकी असाधारण योग्यता को देखकर सं.1840 में आपके पिताजी ने अपना फ़र्म अलग कर लिया और उसकी देखरेख का भार आपके जिम्मे किया। आपके काम संभालते ही आपकी फर्म तेजी के साथ अपनी उन्नति करने लगी।

सेठ रामनारायण जी की कार्यकुशलता तथा उद्यमशीलता को देखकर सासुन जे. डेविड एण्ड कंपनी के मालिक सर सासुन जे. डेविड का विश्वास और प्रेम दिन प्रतिदिन आप पर विशेष बढ़ता गया। धीरे-धीरे सासुन जे. डेविड हर एक व्यापारिक कामों में आपको अपने साथ रखने लगे। जिससे नित्य बड़ी-बड़ी कंपनियों और ऑफिसों के संसर्ग में आने के कारण आपका व्यवसायिक ज्ञान परिपक्व होता गया तथा तत्कालीन व्यापारिक गतिविधि के सूक्ष्म तत्वों का अध्ययन भली प्रकार करने का अवसर आपको प्राप्त होता गया।

संवत् 1853 में आपके पिताजी ने अत्यन्त प्रेम के साथ आप चारों भाइयों को अलग-अलग कर दिया तबसे आपने अपना स्वतंत्र व्यापार मैसर्स हरनंदराय रामनारायण के नाम से प्रारंभ किया। इस प्रकार अफीम और रूई का व्यवसाय आप बहुत वर्षों तक सफलता पूर्वक करते रहे। उस समय रूई के व्यवसायियों में आप गणमान्य और दूरदर्शी व्यवसायी थे। जब 2 व्यवसायिक क्षेत्र में पेचीदे मामले उपस्थित होते, तब-तब उलझनपूर्ण गुत्थियों को सुलझाने में आपका बहुत अग्रभाग रहता था। उस समय मुम्बई में मारवाड़ी समाज की भिन्न-भिन्न छः पंचायतों की दुकानों का कोई संगठन नहीं था, अतएव उन्हेंअपने रूई अलसी, सीड हीट, और चांदी सोना के व्यवसाय में पैदा होने वाले झगड़ों को निपटाने के लिए पंच सराफ एसोसिएशन या कोर्ट की शरण लेना पड़ती थी। इसी समय युरोपीय महायुद्ध के आरंभ हो जाने से सन् 1914 के श्रावण भाद्रपद

वायदे की चांदी के भाव एक दम बढ़ गये जिससे एक भाव निश्चित करने के लिये यहां के व्यापारिक समाज को एक मत होने की आवश्यकता अनुभव हुई, अतएव सेठ रामनारायण जी ने नीमच के सेठ नथमल जी चोरड़िया को साथ लेकर व्यवसायिक समाज का एक सम्मिलित संगठन किया और सन्1915 की 18 जुलाई को छहों पंचायतों के 236 सभ्यों ने एकत्रित होकर दि मारवाड़ी चेम्बर ऑफ कॉमर्स की स्थापना की एवं इस संस्था के स्थाई सभापति के स्थान पर सेठ रामनारायण जी रुइया जे.पी. अधिष्ठित किये गये। थोड़े ही काल में इस चेम्बर ने सीड, हीटा, अलसी और हुण्डी चिट्ठी के संबंध में कई निश्चित नियम बनाये एवं रेलवे कंपनी से लिखा-पढ़ी करके रेलवे नूर के संबंध में कई बड़ी-बड़ी मुश्किलें आसान कीं। इस प्रकार बहुत थोड़े काल में सेठ रामनारायण जी के वजनदार सहयोग से यह संस्था कमर्शियल इंटेलिजेंस ब्यूरों के समान कार्य करने लगी और दिन प्रतिदिन संस्था पर मेम्बरों का विश्वास अधिक दृढ़ होने लगा।

यूरोपीय युद्ध के समय सन् 1916-17 में बम्बई में कॉटन ट्रेड एसोसिएशन और कॉटन एक्सचेंज कंपनी नामक दो संस्थाएं थीं। प्रथम संस्था अंग्रेजों के हाथों में एवं दूसरी अंग्रेजों तथा भारतीयों के हाथों में थीं। इन संस्थाओं में अपील सुनने, ड्यूडेट का भाव भरने एवं इसी प्रकार के महत्वपूर्ण कार्यों में मारवाड़ी समाज का कोई व्यक्ति न होने से मारवाड़ियों को बड़ा कष्ट उठाना पड़ता था अतएव सेठ रामनारायण जी ने चेम्बर की ओर से उक्त सभा में अपने प्रतिनिधि रखने की पूर्ण कोशिश की, जिससे कॉटन ट्रेड एसोसिएशन से,कॉटन एक्सचेंज कंपनी को कई अधिकार प्राप्त हुए। इस महत्वपूर्ण सहूलियतों से व्यवसायिक गर्व को बहुत लाभ हुआ। इसके संबंध में चेम्बर ने धन्यवाद पूर्वक लिखा था कि आपने चेम्बर की नौका को जिस योग्यता, दीर्घ दक्षता और आत्मयोग से तरह-तरह के तूफानों से बचाया है, वह अत्यंत सराहनीय है। हमें इस बात का वर्ग है कि आप चेम्बर के अध्यक्ष आसन पर विराजमान है। ईश्वर से प्रार्थना है कि इस आसन को आपके समान प्रतिष्ठित और सुयोग्य व्यक्ति भूषित किया करें। इस प्रकार सेठ रामनारायण जी मारवाड़ी समाज के हितों को दृढ़ करने के लिये अधिकाधिक भाग लेते रहें। उस समय अलसी व गल्ले के सौदों के जो कबाले ऑफिस और मिल वालों के द्वारा होते थे, उनसे भारतीय व्यापारियों को बहुत हानि होती थी, इससे चेम्बर ने ग्रेन मर्चेन्ट एसोसिएशन से मिलकर नये

कबाले तैयार किये जो ऑफिस और मिल वालों को स्वीकार करने पड़े।

सन् 1817-18 में रूई के बाजार ने बहुत गंभीर रूप धारण किया, रूई का भाव 350 से उठकर 700 तक पहुंच गया, और उसकी बढ़ती कीमत रोकी नहीं जाती तो शायद उसका भाव 800-900 तक पहुंच जाता। माल की कमी तथा भड़ोच की रूई फाइन निकलने के कारण भाव बहुत ऊंचे चले गये, इससे दलालों ने बाजार बंद कर दिया। अंत में वायदा 712 के भाव पर पट गया। इसी अर्से में भारत सरकार द्वारा स्थापित इण्डियन कॉटन कमेटी ने, रूई के व्यापार को पक्के पाये पर चलाने के लिये यहां की संस्थाओं के साथ सम्पर्क किया। इस रिपोर्ट के पहुंचने पर भारत सरकार ने विलायत से अपनी कार्यकारिणी के 2 सभासद सर जार्ज वार्नस तथा सर जार्ज लाड्स को भारत भेजा। बहुत विरोध तथा परामर्श के पश्चात उन्होंने डिफेंस ऑफ इण्डिया एक्ट को काम लेकर रूई के व्यापार का प्रबंध करने के लिये एक कॉटन कंट्राक्ट कमेटी बनाई। इसमें मारवाड़ी चेम्बर की ओर से उसके सभापति सेठ रामनारायण जी रुइया जे.पी. तथा कॉटन ब्रोकर्स एसोसिएशन के सभापति सेठ शिवनारायण जी नेमाणी नियत कियेगये।

उपरोक्त काम चलाऊ कमेटी के बाद सरकार ने रूई के व्यापार का संगठन करने के लिये एक कॉटन कंट्राक्ट बोर्ड का स्थापन किया। बोर्ड के सभासद् सरकार निश्चित करेगी तथा उसका सभापति सरकारी अधिकारी रहेगा। सरकार के इस प्रस्ताव का व्यवसायिक समाज ने काफी विरोध किया। आखिर यह तय हुआ कि बोर्ड के12 सदस्यों में से तीन व्यापारियों द्वारा 2 मिल एसोसिएशन द्वारा एवं 7 सरकार द्वारा तय किये जायें। इस प्रकार सरकार की तरफ से चुने हुए मेम्बरों में सेठ रामनारायणजी रुइया तथा व्यापारियों की ओर से सेठ आनंदीलाल जी पोद्दार और सेठ लक्ष्मणदास जी डागा चुने गए। इस कमेटी के द्वारा भी मारवाड़ी समाज का बहुत हित हुआ। उपरोक्त अवतरणों से यह सिद्ध होता है कि सेठ रामनारायण जी रुइया जिस प्रकार व्यापारिक समाज में अग्रगण्य और प्रतिभावान पुरुष थे, उसी प्रकार गवर्नमेंट में भी उनका बहुत सम्मान था।

आपके सार्वजनिक जीवन की एक महत्पूर्ण घटना बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना है इस बैंक की स्थापना में आपने जी जान से कोशिश की। सन् 1906 में जबसे इस बैंक की नींव पड़ी, तबसे अंत तक आप उसके डायरेक्टर रहे। हिन्दुस्तानी सराफे का काम आपकी बहुमूल्य सलाह से किया जाता था। इस बैंक के लिये आपकी सेवाएं बहुत महत्वपूर्ण थीं और यही कारण था कि बैंक के

दूसरे डायरेक्टरों ने उसका विशेष भार आप ही पर छोड़ रखा था। आपकी सलाह के अनुसार काम करके बैंक ऑफ इण्डिया ने बहुत उन्नति की तथा इस प्रतिष्ठित स्थान पर अपना अस्तित्व कायम किया। वह समय था जब संसार में बीमा व्यवसाय जोर पकड़ रहा था और सेठ साहब बीमा व्यवसाय के उज्जवल भविष्य को अपनी दूरवर्ती दृष्टि से स्पष्ट देख रहे थे। यही कारण था कि आपने बीमा व्यवसाय को स्पष्ट उत्तेजन देने के लिये न्यू इण्डिया इंश्योरेंस कंपनी की स्थापना में अपना हाथ बंटाया और जीवन भर आप उसके डायरेक्टर रहे। कहना न होगा कि उस समय भारत में बीमा कंपनियां इनी-गिनी ही थीं। इस प्रकार सेठ रामनारायण जी का जीवन अत्यन्त उच्च व्यवसायिक एवं प्रभावशाली रहा है। बम्बई के मारवाड़ी समाज में ही नहीं, प्रत्युत अंग्रेज, पारसी और गुजराती व्यवसायियों में भी आप गणमान्य व्यक्ति थे।

दानशीलता तथा शिक्षा संबंधी कार्य

हम ऊपर लिख आये हैं कि संसार में सम्पत्ति का उपार्जित करना बहुत कठिन कार्य है : मगर उससे भी कठिन कार्य अपनी उपार्जित की हुई सम्पत्ति सद् व्यय करना है। सम्पत्ति का उपार्जन करने में जहां सौ आदमी सफल होते हैं, वहां उसका सद्व्यय करने में कठिनाई से एक आदमी सफल होता है। सेठ रामनारायण जी रुइया ने जहां अपने बुद्धिबल से लाखों करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति उपार्जित की। वहां उस सम्पत्ति का सद्व्यय करने भी आपने अपनी योग्यता का पूरा-पूरा परिचय दिया।

आपने देखा कि हमारे समाज और इस देश के पतन के जितने मूल कारण है, उनमें शिक्षा का अभाव ही सबसे प्रधान है। शिक्षा के अभाव से ही हमारे देशवासी पंगु और अकर्मण्य हो रहे हैं। तब आपने अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग अधिकतर शिक्षा के प्रचार में ही करना उचित समझा। उस समय माननीय मालवीय जी के द्वारा स्थापित बनारस का हिन्दू विश्वविद्यालय अपनी महत्वपूर्ण सेवाओं से सारे देश का ध्यान अपनी ओर खींच रहा था, आप भी इस विद्यालय की ओर आकर्षित हुए और उदारता के साथ एक लाख रुपया का दान उस संस्था को दिया।

इसके पश्चात जब मुम्बई में आपके तथा दूसरे मारवाड़ी महानुभावों के प्रयास से सुप्रसिद्ध मारवाड़ी विद्यालय की स्थापना होने लगी, तब आपने उसमें भी लगभग 95वें हजार रुपया प्रदान करने की उदारता दिखलाई।

आज रुपये की कीमत आज से 100 साल पहले रुपये की कीमत से 100 गुना अधिक है। भारत के अग्रवाल समाज में आप नामी पुरुष थे, आप जब मारवाड़ी अग्रवाल सभा के बम्बई अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष के पद पर सुशोभित हुए थे, उस समय अग्रवाल जातीय कोष के स्थापन की बहुत आवश्यकता प्रतीत हुई अतएव जाति को स्थाई और ठोस लाभ पहुंचाने के उद्देश्य से जातीय कोष की स्थापना में भी आपने प्रशंसनीय भाग लिया तथा उसमें भी लगभग एक लाख रुपयों की सहायता आपने प्रदान की।

इसके अतिरिक्त रामगढ़ में आपके तथा आपके छोटे बन्धु सेठ सूरजमल की ओर से हर नंदराय संस्कृत कॉलेज चल रहा है तथा आपकी ओर से वहां एक कन्या पाठशाला चल रही है। संस्कृत कॉलेज के लिये आपने एक लाख रुपयों की स्थाई सम्पत्ति दान की है। इसी प्रकार स्वर्गाश्रम (लक्ष्मण झूला) तथा अनूप शहर के समीप भृगुक्षेत्र में आपकी ओर से साधुओं के लिये अन्नक्षेत्र और विद्यार्थियों के लिये पाठशाला चल रही है। इसी प्रकार और भी अनेकों सार्वजनिक संस्थाओं में आप उदारतापूर्वक सहायता देते रहते थे।

अनुकरणीय दान- सबसे महत्व का दान सेठ साहब अपने स्वर्गवास होने के समय करीब बीस लाख रुपयों का एक ट्रस्ट बनाकर कर गये हैं। इस ट्रस्ट के वर्तमान ट्रस्टी आपकी सुयोग्य धर्मपत्नी श्रीमती सुवृत्तावाई,आपके पुत्र श्रीयुत रामनिवास जी, श्रीयुत मदनमोहन जी, श्रीयुत राधाकृष्ण जी तथा आपके परम स्नेही मित्र त्यागमूर्ति सेठ जमनालाल जी बजाज और आपके विश्वासपात्र मुनीम श्री युत पालीराम जी बनाये गये। इस ट्रस्ट के द्वारा लगभग पौन लाख रुपया प्रतिवर्ष धार्मिक और सार्वजनिक कामों में खरच होता है।

सेठ साहब के सामाजिक विचार भी बड़े परिष्कृत और वजनदार थे। यद्यपि जमाने की धार के साथ बहना आपको पसंद नहीं था, फिर भी सच्चे सामाजिक सुधारों की जो मजबूत पायेदारी है, उस पर आपकी सूक्ष्म दृष्टि हमेशा रहा करती थी। आप कई सामाजिक कुरीतियों के बड़े विरोधी थे, मारवाड़ी अग्रवाल सभा में आप बड़ा सहयोग देते थे और उसके मुम्बई अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष का आसन भी आपने ग्रहण किया था।

उपरोक्त अवतरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सेठ रामनारायण जी रुइया का जीवन क्या व्यापारिक, क्या सार्वजनिक और क्या धार्मिक सभी विषयों में उत्तरोत्तर प्रगतिशील रहा है। इतने बड़े वैभव और सम्पत्ति के मालिक

होते हुए भी आपका स्वभाव अत्यन्त सरल और निराभिमान था। अहंकार ने कभी आपको स्पर्श भी नहीं किया था। आपकी परोपकार वृत्ति हमेशा ज्वलन्त बनी रही। आपका जीवन आदर्श और अनुकरणीय जीवन का बहुत सुंदर नमूना रहा। सेठ साहब बम्बई नगर के अंदर बड़े प्रतिष्ठित, नामांकित और सम्पत्तिशाली व्यक्ति रहे हैं। आपकी प्रतिभा और योग्यता के साथ आपकी भाग्य लक्ष्मी ने भी आपका पूरा-पूरा साथ दिया है। उसी का प्रताप है कि आपके पीछे भी आपका कुटुम्ब सारे अग्रवाल समाज में प्रतिष्ठा के साथ चमकता हुआ दिखाई दे रहा है।

स्वर्गवास- आपके जीवन के अंतिम तीन वर्षों में आपके शरीर पर श्वासकी बीमारी ने बड़ा प्रबल आक्रमण किया, जिससेआपका शरीर बहुत कमजोर हो गया था। इनवर्षों में आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सुव्रतांबाई ने आपकी जो प्रशंसनीय सेवाएं कीं, वह भारतीय नारियों के लिये एक आदर्श और अनुकरणीय वस्तु है। इस कठिन समय में आपने अपने सारे व्यक्तित्व को अपने पूज्य पतिदेव के व्यक्तित्व में लीन कर दिया। इससे सेठ साहब की आत्मा को बड़ा संतोष और सांत्वना प्राप्त हुई। अंत में सं. 1986 की भादवा बदी 4 शनिवार को को 66 वर्ष की अवस्था में आपका स्वर्गवास मुम्बई में हुआ। आपके निवास आनंद भवन में आपकी अंत्येष्टि क्रिया हुई। इस स्थान पर आपके स्मारक स्वरूप एक छत्री बनी हुई है।

-जयप्रकाश सरावगी, लक्ष्मणगढ़

ऋषिकेश के लक्ष्मण झूले के निर्माता

सूर्यमल जी झुंझुनूवाला

मारवाड़ी समाज में सूर्यमलजी का स्थान बहुत ऊंचा रहा। यदि यह कहा जाए कि, मारवाड़ी जाति को बंगाल प्रदेश में सुप्रसिद्ध और वाणिज्य व्यापार तथा सामाजिक कामों में समुन्नत बनाने में सर्वोपरि हाथ उनका रहा तो कोई अत्युक्ति न होगी। सूर्यमलजी उन महान् पुरूषों में से थे जो अपनी उन्नति के साथ-साथ अपनी जाति और जातिभाइयों की उन्नति करते हैं। सूर्यमलजी अपना स्वार्थ सिद्ध करते हुए भी परमार्थ को नहीं भूलते थे।

यद्यपि आज उनका पांचभौतिक शरीर नहीं रहा, तो भी उनकी दिवंगत आत्मा आज भी मारवाड़ी समाज के व्यक्तियों में अपना प्रभाव दिखा रही है। वे जहां कुशल व्यापारी थे, वहां बड़े भारी समाज-सेवक और महान् दानी भी थे। समाज के लिए उन्होंने बड़े-बड़े काम किये। यहां तक कि, समाज के किन्हीं दो भाइयों में किसी प्रकार का वैमन्सय हुआ देखते तो वे अधीर हो उठते थे और दो-दो चार-चार दिन उपासे रह कर बड़ी तत्परता से उसे सलटा देते थे। आजकल प्राय: देखा जाता है कि, बड़े आदमी कहलाने वाले कतिपय धनिक व्यक्तियों की यह एक खास नीति-सी हो गयी है कि, अपने बराबर की हैसियत रखनेवाले व्यक्तियों में किसी प्रकार का पारस्परिक झगड़ा उत्पन्न हो जाता है तो वे लोग प्रकट में अधिकतर उन्हें भिड़ा देने और बरबाद करने की ही कोशिश करते हैं। उनका यह भाव रहता है कि, उनकी बरबादी होने से ही उनकी प्रधानता रहेगी। पर सूर्यमलजी इस कुभाव से बहुत दूर रहते थे। वे जानते थे कि, मारवाड़ी जाति के प्रत्येक भाई की उन्नति में ही समाज की उन्नति है और समाज की उन्नति से ही मारवाड़ी जाति इस बंगाल प्रदेश में अपना सिक्का रख सकती है।

सूर्यमलजी शेखावटी चिड़ावे के रहनेवाले अग्रवंशी झूंझनूंवाले थे। उनका जन्म अपने वासस्थान चिड़ावे में १४ मार्च सन् १८४७ ईस्वी में हुआ था

और मृत्यु ता. १२ मार्च सन् १८९५ ईस्वी में हुई। उन्होंने बड़ी उम्र नहीं पाई किन्तु अपने ४७ वर्ष के जीवन-काल में जो कुछ कर दिखाया, वह महान् था।

जब वे १२ अथवा १३ वर्ष के हुए, उस समय घर की आर्थिक अवस्था बहुत साधारण थी। वे कमाने के लक्ष्य से पैदल ही अपने ग्राम से चल पड़े और किसी तरह कलकत्ते पहुंच गये। यहां आकर वे 'लालचन्द बलदेवदास' की गद्दी में रहने लगे। कुछ समय तक वहीं काम भी किया। पता लगता है कि, उसके बाद वे प्राणकिशन अथवा दुर्गाचरण लाल की आफिस में माल की चिटठी चुकाने लगे थे। कहा जाता है कि, यद्यपि वे चिटठी चुकाने की नौकरी करते थे, तथापि व्यापारिक साहस अधिक होने के कारण वे और भी कुछ कारोबार कर लिया करते थे। उनके विषय में एक बात कही जाती है कि, जिस समय वे चिटठी चुकाते थे, उस समय उन्होंने कई हजार रूपये व्यक्तिगत व्यापार में खो दिये और अपनी इज्जत रखने के लिये चुकाई हुई चिटिठ्यों के रूपये अपने घाटे में भुगता दिये। यह भी सुनने में आता है कि, किसी खास व्यक्ति ने दुर्गाचरण लाल से कह दिया कि, उनके रूपये इसी प्रकार बिगड़ रहे हैं। फिर क्या था, दूसरे ही दिन सूर्यमलजी से कहा गया कि, जो चिटिठ्यां खड़ी हैं, उन सब का हिसाब कल तक समझाओ। इतना पूछना था कि, सूर्यमलजी के होश उड़ गये। उन्होंने विचार किया कि, जो रूपये बिगड़ गये हैं, वे तो हैं नहीं, अब हिसाब कैसे पूरा करेंगे? बड़े मानी प्रकृति के आदमी थे। इसी विचार में वे अपने बासे में जाकर पड़े रहे।

उनका साथी एक मित्र था, जो उनसे बड़ा स्नेह रखता था। जब वह बासे में आया और उन्हें बुरी अवस्था में पड़े देखा तो कुछ हाल जान कर तथा आत्महत्या की बात सुनकर सहम गया। उसके पास पन्द्रह बीस हजार रूपये थे। उसने कहा कि, 'मेरे पास इतने रूपये हैं। तुम चिटिठ्यों का हिसाब बराबर समझा दो।' सूर्यमलजी ने दूसरे दिन सब हिसाब पूरा कर दिया। जब हिसाब में कोई गोलमाल साबित नहीं हुआ तो, दुर्गाचरण लाल महोदय ने समझा कि, जिस आदमी ने सूचना दी थी वह झूठा था और व्यक्तिगत द्वेष के कारण ही उसने झूठी चुगली खाई थी। सूर्यमल बड़ा नेक आदमी है और उससे ऐसा काम नहीं हो सकता। परिणाम यह हुआ कि, उसी दिन से सूर्यमलजी का मान होने लगा। वे आफिस के दलाल बन गये। बाद में 'ग्राहम कम्पनी' की आफिस भी उनके हाथ में आ गई। सूर्यमलजी की अवस्था सुधर चली तो जिस मित्र ने उन्हें समय

पर अपनी कुल पूँजी देकर उनकी इज्जत बचाई थी, उसका एहसान वे कभी नहीं भूले, यही नहीं, बल्कि जिस व्यक्ति ने चुगली खाई थी उस पर भी सूर्यमलजी ने कोई रोष नहीं किया। उन्होंने विचार किया कि, घटना तो सच थी, इसमें उसका क्या दोष? यह तो एक ईश्वरीय प्रेरणा थी जो उसके द्वारा प्रकट हुई और उनका भाग्योदय हुआ। सूर्यमलजी ने चुगली खाने वाले उस भाई को एक सौ रूपये मासिक वृत्ति जीवन पर्यन्त दी। इस विचित्र घटना से कई भाव प्रकट होतें हैं। परन्तु हमें इस घटना का निष्कर्ष यह निकालना चाहिए कि, कभी-कभी अच्छे से अच्छे मनुष्य को भी अवस्था विशेष के कारण अनुचित काम में फंस जाना पड़ता है। पर जिस व्यक्ति का असली लक्ष्य दूषित नहीं होता, उसकी रक्षा परमात्मा करता है। डूबता वही व्यक्ति है, जिसने जानबूझकर किसी जघन्य कार्य में हाथ दिया हो। सूर्यमलजी हृदय से नेक थे और नेक व्यक्ति की रक्षा भगवान् करता है। यही बात इस घटना के सम्बन्ध में माननी चाहिए।

सूर्यमलजी में बाल्यावस्था से ही सच्चाई, नम्रता, सहनशीलता और कार्य-तत्परता विद्यमान थी। धर्म पर विश्वास था। जब वे कलकत्ते आये और कारोबार करने लगे तो उन्होंने अपनी आय का कुछ निश्चित अंश धर्मादे में लगाना निश्चय कर लिया था। यही कारण था कि, अपनी जीवित अवस्था में उन्होंने अनेक धार्मिक कार्य किये और मरते समय 'ग्राहम कम्पनी' की दलाली की कुल आय पूर्णरूप से धर्मादे खाते कर गये। पुण्य के काम में वे सदा आगे रहते थे। कोई भाई साथ दे तो अमुक काम करें, इसकी वे प्रतीक्षा या प्रवाह नहीं करते थे।

जात्युन्नति और समाज-सेवा तो उनके जीवन का लक्ष्य ही था। आजकल के धनिकों की तरह बड़प्पन में धक्का न लग जाये, यह आशंका उन्हें कभी न होती थी। जाति-हित का कोई भी कार्य जो सामने आ जाता उसे वे हिम्मत के साथ आगे होकर पूरा करते थे। एक समय था जब कि, पहले-पहल कलकत्ते में चर्बी मिश्रित घी का आन्दोलन उठा तो उन्होंने साहस के साथ उसका प्रतिवाद किया था। कलकत्ते में ब्राह्मण भोजन के समय बहुत सी भ्रष्टचरित्रा स्त्रियाँ दक्षिणा लिया करती थी, उन्होंने पं. देवीसहायजी की राय से उन सब का बहिष्कार करवा दिया था। हरिद्वार में महावारूणि के समय सरकारी कर्मचारियों ने मेला तोड़ने में मनमानी की थी, उन्होंने ही उस समय 'ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन' के द्वारा, हजारों रूपये खर्च कर उसका प्रतिवाद कराया और बड़ा

आन्दोलन उठाया जिसके परिणास्वरूप एक कमीशन बैठा। पश्चिमोत्तर प्रदेश की सरकार ने इस आन्दोलन की अपने सरकारी गजट में बहुत कड़ी आलोचना भी की थी। सूर्यमलजी यदि डरपोक होते तो उस आलोचना से हट जाते; परन्तु उनका साहस अदम्य था और लगन सच्ची थी। वे किसी प्रकार भी विचलित नहीं हुए और उस कार्य को पूरा करके ही छोड़ा। इस प्रकार अन्य अनेक कार्य उन्होंने किये।

कलकत्ते में उन्होंने ही पहले-पहल मलिक्क स्ट्रीट में धर्मशाला बनवाई, उसी में चिकित्सालय भी खोला और श्राद्धकर्म के लिए गंगातट पर घाट बनवाया। श्री बद्रीनारायण धाम की यात्रा में यात्री लोग खतरनाक झूलों पर चढ़ कर पार होते थे, वहां पर 'लक्ष्मण झूला' नामक झूलता हुआ पुल बनवा दिया। ऋषीकेश में कालीकमलीवाले बाबा विशुद्धानन्द गिरि के उपदेश से पंचायती धर्मशाला और सदावर्त बनवाने में पहला हाथ रखा, हरिद्वार में धर्मशाला बनवाई और कई एक जीर्ण स्थानों की मरम्मत कराने में लाखों रूपये लगाये। उत्तर भारत में उनका नाम अमर हो गया। लेखक को याद है कि, कोई तीस वर्ष पहले एक पंजाबी व्यक्ति कलकत्ते में इस उद्देश्य से आया था कि, वह उन राजा सूर्यमल का दर्शन करके अपने को कृतार्थ करेगा जिन्होंने बद्रीनाथ धाम के मार्ग में स्थान-स्थान पर धर्म के कार्य किये हैं। वह पूछता फिरता था। एक सज्जन ने कहा कि, वे तो अब जीवित नहीं हैं, किन्तु उनके पुत्र मिल सकते हैं। उन्होंने कहा उनके ही दर्शन करा दो। वह सज्जन उसे शिवप्रसादजी के पास ले गया और वह उनके चरणों में गिर पड़ा और कहा कि, 'आप धन्य हैं।' शिवप्रसादजी ने उसे छाती से लगा लिया। अपने जन्म स्थान चिड़ावे में धर्मशाला, संस्कृत-हिन्दी और अंग्रेजी की पाठशालाएं खोलीं। उन्होंने इतने काम किये कि, जिसका उस समय कोई जोड़ नही था। एक कवि ने कहा था कि,-

'पुल बान्धायो जिन धर्म को, कियो अतुल जिन दान।
रायबहादुर सेठ सो, सूरजमल धनवान॥'

बड़े बाजार के व्यापार में उन्हीं का बोलबाला था। आफिस के माल के चलते हुए नम्बर वे बन्धे हुए व्यापारियों को देते थे। इसके अतिरिक्त कई एक व्यक्तियों को अपना धन लगवा कर दुकानें खुलवा दी थीं। यदि कोई दुकानदार 'ग्राहम कम्पनी' का काम करता था और किसी समय घाटे में आकर फेल होने की अवस्था में आता तो जहां तक सम्भव होता उसे वे बचा लेते थे और फेल

नहीं होने देते थे। समाज की बड़ी पंचायत के तो वे प्राण थे।

उनके बड़े पुत्र शिवप्रसादजी और छोटे गंगाप्रसादजी हुए। शिवप्रसादजी बड़े होकर होनहार निकले। उन्होंने पिता की ख्याति बहुत अधिक बढ़ाई और कई ऐसे काम किये जो कि; उनसे भी बढ़ कर थे। जो काम सूर्यमलजी द्वारा शुरू हुए थे, उन सब कि उन्होंने रक्षा तो कि ही- इसके अतिरिक्त गयाजी और पुनपना में विशाल धर्मशालाएँ बनवाई। सभी धार्मिक कार्यों को स्थायी रूप से चलाने के लिए प्राय: २५ लाख रूपयों के स्टेट का ट्रस्ट बना जिसमें 'खैरा' राज्य की जमींदारी भी है। शिवप्रसादजी का स्थान समाज में प्रमुख रहा।

'अच्छे जनों का जीवन थोड़ा ही फरमाया' के अनुसार सूर्यमलजी ने केवल सैंतालीस वर्ष की अवस्था में ही अपनी ईहलीला समाप्त कर दी। इनकी मृत्यु पर एक कवि ने कहा था -

'सूरजमल सूरज बिना, अब यो बड़ोबाजार।
अन्धकारमय हो गयो, गयो सत्य व्यापार॥'

-संतोष सर्राफ, रामगढ़

शाह बिहारी (बांके बिहारी) वृन्दावन मन्दिर के निर्माता

अग्र शिरोमणि, भक्तप्रवर

ललित किशोरी एवं ललित माधुरी

प्यारी मुहिं दीजै श्री वृंदावनवास, छिन प्रति नव अनुराग बढ़त जहं

भक्त प्रेम रस रास के अमर गायक, कृष्ण भक्त शिरोमणि ललित-किशोरी एवं ललित माधुरी की भक्ति रस से ओत-प्रोत वाणी न जाने कितने रसिक जनों को ब्रज के कण-कण में निनांदित होती हुई राधा कृष्ण की रूप माधुरी का पान करा रही है और न जाने कितने भक्तगणों ने वृंदावन के शाहविहारी जी के मंदिर के दर्शन कर कृत-कृत्य का अनुभव किया होगा, किन्तु कितने अग्रवाल ऐसे होंगे जो समाज की इन विभूतियों के विषय में जानते हेांगे या जिन्होंने उनके भक्ति रस से ओत-प्रोत पदों का पान कर अपना जीवन कृत्य-कृत्य किया होगा? तो आइये। आज हम आपको अग्र समाज के इन दो अनुपम कृष्ण भक्त रसिकों से परिचय कराएं। श्री ललित किशोरी एवं ललित माधुरी दोनों ही कृष्ण भक्त थे और दोनों का जीवन भक्ति रसमय था। श्री ललित किशोरी का जन्म कार्तिक कृष्ण शुक्ला 2, संवत 1882 को और भक्त ललित माधुरी का जन्म माघ शुक्ला 14, सम्वत् 1885 को लखनऊ के शाह परिवार में हुआ। आप दोनों का बचपन का नाम क्रमश: शाह कुंदनलाल और शाह फुंदनलाल था। आपके पूज्य पितामह शाह विहारी लाल जी अपने समय के कोट्याधीश सेठ थे। आपका हीरे-जवारात का व्यापार था और नवाबी से आपको शाह की उपाधि मिली थी। आपने वृंदावन में राधारमण जी का मंदिर भी बनवाया था। आपके ज्येष्ठ पुत्र शाह गोविन्दलाल जी की द्वितीय पत्नी के गर्भ से ही आप दोनों भाइयों का जन्म हुआ था।

दोनों सहोदर भाइयों में गहरा प्रेम था। दोनों एक-दूसरे से राम-लक्ष्मण की तरह प्रेम करते थे। दोनों ही अच्छे कवि और भगवान कृष्ण की लीलाओं के रसिक थे। दोनों ही भाई हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, बंगला, संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं के जानकर थे। दोनों ही प्रवीण गवैये और संगीत की विभिन्न रागों के

ज्ञाता थे। श्री ललित किशोरी काव्य रचना में इतने प्रवीण थे और उनकी कवित्व शक्ति इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि प्राय: पत्र भी ब्रज भाषा की कविता में लिखते थे। आपने विद्वानों की सहायता से चातुवर्ण्य विवेक ग्रंथ का प्रणयन किया तथा उसके द्वारा प्रतिपादित किया कि वैश्यों की संस्कृत शिक्षा देना वेद शास्त्रानुकूल है।

आपके परिवार का वातावरण धर्ममय था। अत: परिवार के संस्कारों का भाव दोनों पर पड़ा और आप बचपन से ही धार्मिक कार्यों में रुचि लेने लगे। सम्वत् 1906 में दोनों भाई श्रीधाम के दर्शनों के लिये वृंदावन पधारे। दोनों का भगवद्चरणों में इतना श्रद्धानुराग था कि आप श्री राधारमण जी के विग्रह पर भेंट के लिये स्वर्णमण्डित सिंहासन अपने साथ लाये। आप लगभग एक मास तक ब्रजभूमि में रहे और भगवान की पावन लीलाओं का दर्शन किया।

श्रीधाम की इस यात्रा ने श्री जी के चरणाविन्दों में आपकी भक्तिभावना को और भी पुष्ट कर दिया। आपने अपने निजसेव्य श्री राधारमण जी के विग्रह को वृंदावन भिजवा दिया और निश्चय प्रकट किया कि वे शीघ्र ही वृंदावन जाकर वास करेंगे और साथ ही अपने निवास स्थान का निर्माण करायेंगे। भक्तवत्सल, करुणासिंधु, दया के निधि भगवान श्रीकृष्ण का अपने भक्तों पर विशेष अनुग्रह रहता है। अपने भक्त ललित किशोरी की सच्ची श्रद्धाभावना और भक्ति देख आपने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिए और शीघ्र ही वृंदावन में आकर निधि वन में निवास करने की प्रेरणा दी। बस क्या था, आप भावमग्न हो गाने लगे-

वृंदावन को जाना हेली वृंदावन को जाना है।
रसिक रंगीले राधामोहन तिनसौं दिल लहराना है॥
ललित किशोरी ने दृढ़ कर अब ये ही मन में ठाना है।
ललित लता निधुवन के नीचे हाईं ठीक-ठिकाना है।

उसके बाद तो आप निरंतर राधा-रमण कृष्ण बिहारी के गुणों का गान करते हुए पद रचना करने लगे। आपके छोटे भ्राता श्री फुंदनलाल जी आपके पदों का संकलन करते जाते। इन्हीं पदों से अमिताष माधुरी, ग्रंथ की रचना हुई। इस ग्रंथ में भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं, श्री ललित किशोरी की भक्ति-भावना, विनय-श्रृंगार, शतलक, बारह मासे, युगल विहार, शतक आदि का बहुत ही सुंदर और मनोहारी चित्रण हुआ है और उनमें भक्ति रस पदों का मनोरम ललित्य ग्रंथ माधुर्य अपनी पूर्णता से समाया हुआ है। भक्ति की इस प्रेम संजीवनी ने आपके रोम-रोम को श्रीचरणों के प्रति आवेग से भर दिया। आप भगवद् लीलाओं

में इतने लीन हो गए कि अपने प्रियतम कृष्ण से एक क्षण के लिये भी बिछुड़े रहना आपके लिये कठिन हो गया और वे शिकायत भरे स्वर में अपने प्रियतम से पुकार उठे-

श्री वृंदावन कुंज लता क्यों नैनों को दरसाइये ना।
रास-विलास रंग कनि मेरे हियरे में सरसाइये ना॥
ललिता किशोरी लाल विनती सुनिवे में अरसाइये ना।
हा- हा टूक मुसक्याय हेरिये जियरा को तरसाइये ना॥

उनकी भक्ति में इतनी तल्लीनता, तन्मयता एवं बेकली थी कि वे इस जन्म की तो बात ही क्या, जन्म जन्मान्तर में भी ब्रज की उन गलियों को नहीं छोड़ना चाहते थे। आपने प्रेम के उस आदर्श को अपना लिया था, जिसमें शरीर शिथिल और चेतना बेसुध हो जाती है। भक्त को अहर्निश अपने प्रियतम को छोड़कर और कुछ नहीं सूझता। ब्रह्म का उच्चारण करते-करते देह स्वयं ब्रह्म हो जाता है। ऐसी अवस्था में भक्त ललित किशोरी जी की एक स्थिति देखिए-

नैन राधे वैनन राधे सैनन राधे कृतनिध राधे।
कानन राधे तानन राधे-राधे हितवत राधे॥
दु:ख में राधे, सुख में राधे, मुख में राधे उर चित राधे।
ललित किशोरी इत राधे उत राधे ज़ित देखा तित राधे।

ब्रजभूमि के प्रति आपके हृदय में इतना अनुराग था कि आपने उस पवित्र धरा पर कभी मल-मूत्र तक नहीं त्यागा। आपके मलमूत्र त्यागने के स्थान पर आगरा से मिट्टी लाकर बिछाई जाती थी और आप आगरा के बने हुए कुण्डों में ही मल-मूत्र त्याग करते थे और उन कुण्डों को ब्रज की सीमा से बाहर फिंकवाया जाता था। ब्रज भूमि से आपका इतना अधिक अनुराग हो गया था कि आपने जीवन के अंतिम समय में यह आदेश दे दिया था कि आपकी कोई भी प्रिय वस्तु यहां तक कि उनका चित्र भी ब्रजभूमि से बाहर नहीं जाना चाहिए।

आपने श्रीकृष्ण एवं राधा के प्रेम को आधार बनाकर जिन गीतों की रचना की, उनको गाकर कोई भी रसिक चैतन्य महाप्रभु सी पदों की भावविह्वलता एवं मस्ती का अनुभव कर सकता है। उनको गाकर वे स्वयं तो धन्य हुए ही, साथ ही कृष्ण-भक्तजनों के लिये वे अमूल्य थाती हैं।

आपने श्रीकृष्ण-राधा की भक्ति से प्रेरित हो माघ शुक्ला पंचमी, वि.सं. 1917 को वृंदावन में राधे विहारी जी के मंदिर का निर्माण प्रांरभ कराया। उनका

यह मंदिर आज भी राशविहारी जी के मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है और उसमें वास्तुकला, चित्रकला, मूर्तिकला का अद्‌भुत समन्वय देखने को मिलता है। मंदिर के गर्भगृह के बाहर हाल है, जिसकी दीवारों पर अंकित चित्रकारी देखने ही योग्य है। प्रवेश द्वार की ओर बाहर विशाल बरामदा बना है, जो विभिन्न स्तंभों पर आधारित है। इन स्तंभों की विशेषता यह है कि ये सभी श्वेत संगमरमर से निर्मित हैं और सर्पाकार लिए हैं। इसलिए इस मंदिर को टेढ़े खंभों वाला मंदिर भी कहा जाता है।

संपूर्ण मंदिर ऊंचे चबूतरे पर बना है। मंदिर के गर्भगृह में स्वर्ण से निर्मित राधे बिहारी जी की अत्यन्त सुंदर प्रतिमाएं हैं। मंदिर के ऊपरी भाग में प्रस्तर निर्मित आकर्षक मूर्तियां हैं, जो विविध भाव-भंगिता लिए है और भक्ति की विभिन्न मुद्राओं को प्रकट करती है। मंदिर के बाहरी प्रांगण में अनेक सुंदर मंडलप, रंग-बिरंगे जल से युक्त फव्वारे और उद्यान है। शाह बिहारी जी के विग्रहों को जब, विशिष्ट अवसरों पर बाहर लाया जाता है तो श्री बिहारी जी इन्हीं मंडपों में अधिष्ठित हो विहार करते हैं।

शाहबिहारी जी के इस मंदिर का निर्माण 8 वर्षों में पूर्ण हुआ। यद्यपि इसका निर्माण-व्यय उपलब्ध नहीं है किन्तु मंदिर की वास्तुकला एवं बनावट को देखते हुए अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय भी इसके निर्माण पर भारी राशि व्यय हुई होगी। इसके रचनाशिल्प की तुलना सहज ही ताजमहल से की जा सकती है। उपयुक्त प्रचार-प्रसार के अभाव में इस अद्‌भुत कलाकृति का मूल्यांकन समुचित ढंग से नहीं हो पाया है अन्यथा अग्रवाल समाज की कीर्ति-कौमुदी में इस मंदिर के कारण आज और भी चार चांद लगे होते और कोई कारण नहीं कि इस मंदिर की गणना भी संसार के आश्चर्यों में न होती।

इस मंदिर की छतों में कांच के बने विभिन्न झाड़-फानूसों का अद्‌भुत संग्रह है। कहा जाता है कि यह विश्व में अपने ढंग का सबसे बड़ा संग्रह है और इसका प्रदर्शन जन्माष्टमी एवं श्रावण के झूलों के अवसर पर विशेष रूप से किया जाता है, जिनके दर्शनों के लिये संपूर्ण भारत से दर्शक आते हैं।

बरामदे के फर्श में एक मुनीम का चित्र भी बना है। इसके विषय में कहा जाता है कि शाह कुंदनलाल (भक्त ललित किशोरी) ने इस पूरे मंदिर को श्वेत संगमरमर के पत्थर से बनवाने का आदेश मुनीम को दिया था किन्तु मंदिर निर्माण में पर्याप्त धन व्यय होते देख मुनीम जी के मन में लालच आ गया और

उन्होंने मंदिर में श्वेत संगमरमर के स्थान पर लाल पत्थर का प्रयोग प्रारंभ कर दिया। इससे वह अंधा हो गया। उसके अधिक गिड़गिड़ाने और क्षमा-याचना करने पर उसका चित्र भक्त प्रवर ललित किशोरी एवं ललित माधुरी के साथ इसलिए बना दिया ताकि भगवान के भक्तों के चरणस्पर्श से उसका भी उद्धार हो जाए। आज भी भक्त ललित किशोरी एवं ललित माधुरी का नाम ब्रज काव्य के रसिकों एवं रास प्रेमियों में अमर है। रास के समय इन पर आज भी बड़ी तन्मयता से गीत गाए जाते हैं और उनको पढ़ भक्त अद्‌भुत रसानुभूति अनुभव करते हैं।

धन्य हैं ऐसे भक्त और धन्य हैं, उनका भगवदानुराग। धन्य है अग्रवाल समाज और धन्य है, उन अग्र माताओं की कूख जो ऐसे यशस्वी भक्तों को जनती हैं। निश्चिंत ही अगग्राल समाज ऐसी विभूतियों को जन्म दे गौरव का अनुभव कर सकता है।

बोलो! भक्त और भगवान की जय!!

अग्रसेन महाराज और अग्रजन की जय!!

डॉ. चम्पालाल गुप्त

महाराज अग्रसेन अध्ययन संस्थान, श्रीगंगानगर के सौजन्य से

अग्रोहा-हम सबका गौरव

● अग्रोहा जो महाराजा अग्रसेन की गौरवमयी राजधानी थी, जहां से महाराजा अग्रसेन का समता, सद्भाव, सहयोग, भाईचारे, अहिंसा, प्रेम ओर एक ईंट, एक रुपया का महान् संदेश, विश्व की मानवमात्र के लिए गुंजित हुआ, जो विश्व में बेजोड़ है।

● अग्रोहा अग्रवालों की पितृभूमि, तीर्थस्थान और पांचवां धाम है, जिसके कण-कण में शौर्य, त्याग, अध्यात्म, पुरातत्व, वीरता, मानव मात्र के प्रति प्रेम की सहस्त्र-सहस्त्र धाराएं फूटीं और जिनके कारण इस धरा का नाम युगों-युगों तक स्मरण किया जाता रहेगा।

● अग्रोहा उन महान अग्रवालों की आदिस्थली है, जिनके उद्योग, साहस, कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी, दान, परोपकार, सहिष्णुता, राष्ट्रप्रेम आदि द्वारा भारत के स्वर्णिम इतिहास का निर्माण हुआ, जो इतिहास की अमूल्य धरोहर है।

● अग्रोहा का अग्रवाल-समाज के इतिहास में वहीं स्थान है, जो ईसाइयों के लिये वेटिकन सिटी, मुसलमानों के लिये मक्का-मदीना, यहूदियों के लिये यरूशलम और सिक्खों के लिये ननकाना साहब का है।

● अग्रोहा अग्रवालों के लिये संगठन, एकता और जागरण का वह प्रेरणास्रोत है, जिसके ध्वज तले एकत्र हो अग्र वैश्य-समाज समानता के आधार पर सम्पूर्ण विश्व में अपनी गौरव-गरिमा पुनः प्रतिष्ठापित कर सकता है।

● अग्रोहा अग्रवालों की पवित्र भूमि और पांचवां धाम ही नहीं, विश्व के मानवमात्र के लिये प्रेरणास्रोत भी है, जहां से समता, भ्रातृत्व, सहिष्णुता, लोकतंत्र, सहकारिता, सर्वजन सुखाय, सर्वजनहिताय, एक सबके लिये, सब एक के लिये का संदेश अणुबम्बों, हिंसा, द्वेष, घृणा से संत्रस्त मानवता को प्राप्त हो रहा है।

● अग्रोहा महाराजा अग्रसेन, कुलदेवी महालक्ष्मी, विद्यादायिनी सरस्वती, वैष्णु देवी, शीलमाता, भगवान मारूति अन्य बड़े-बड़े मंदिरों एवं दर्शनीय स्थलों की नगरी है। जिनके दर्शन मात्र से मन को अद्भुत शान्ति मिलती है। पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास के साथ की गई कामनाएं फलीभूत होती हैं।

● अग्रोहा की शान प्रत्येक देशवासी की शान और अग्रोहा का गौरव पूरे देश का गौरव है।

आइये। अग्रोहा को महान बनायें।

सदस्य प्रकाशक मण्डल

श्री महावीर प्रसाद बैद
7 ई ब्लॉक, श्रीगंगानगर
फोन: 0154-2463958

श्री रामलाल गुप्ता,एडवोकेट
49- ई- ब्लॉक, महाराजा अग्रसेन मार्ग, श्रीगंगानगर
फोन:2480507, 9351370507

श्री ललित अग्रवाल
बालकिशन ओमप्रकाश
पुरानी धान मण्डी,श्रीगंगानगर
फोन:0154-2442025

श्री राजेन्द्र लोहिया
8 न्यू विनोबा बस्ती, श्रीगंगानगर
मो: 9928112140

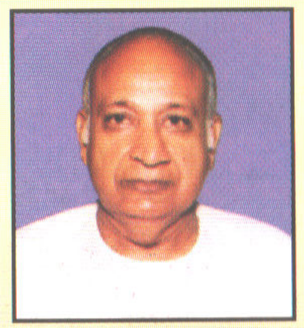

श्री शामलाल जैन
जैन गोटा स्टोर
28 सदर बाजार, श्रीगंगानगर
मो: 9829509800

श्री श्योपत बंसल
बंसल ट्रेडर्स,
मैन बाजार श्रीगंगानगर
फोन-2441552

डॉ. श्यामसुन्दर टांटिया
2-ए-5 सुखाड़ियानगर
श्रीगंगानगर
फोन : 0154-2429724

श्री नरेश अग्रवाल
61- एन ब्लॉक,
श्रीगंगानगर
फोन: 94143-69295

श्री रविन्द्र जैन
जैन कैमिकल्स
महाराजा अग्रसेन मार्ग,श्रीगंगानगर
मो: 9414089996, 9214673178

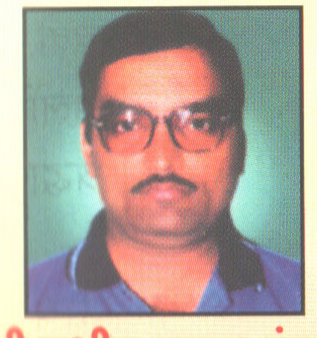

श्री सुशील कुमार बंसल
47- मॉडल कॉलोनी, श्रीगंगानगर
फोन-2461920, 9414088920

श्री रमन गुप्ता
1004, अग्रसेन नगर, श्रीगंगानगर
फोन-2461735

श्री रामबाबू गर्ग
21 डी, प्रेम नगर, श्रीगंगानगर
फोन-0154-2484405

सदस्य प्रकाशक मण्डल

श्री सुशील गोयल, एडवोकेट
21के ब्लॉक, श्रीगंगानगर
मो. 94146-34630

इंजि. विनोद जैन
डब्ल्यू-13 पीएचईडी कैम्पस, श्रीगंगानगर
मो. 94144-82206

श्री रतनलाल नागौरी, एडवोकेट
राजा कोठी, वार्ड नं. 32, हनुमानगढ टाउन
मो.-94142-25428

श्री जियालाल अग्रवाल
मै. पवन कु मार राकेश कुमार,
टाउन-जंक्शन रोड,हनुमानगढ टाउन
मो.- 94145-10310

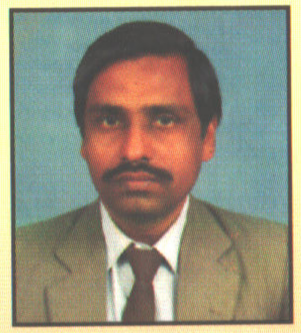

श्री अशोक कुमार गुप्ता
2-ब-15, प्रताप नगर,
जोधपुर
फोन-0291-2762114

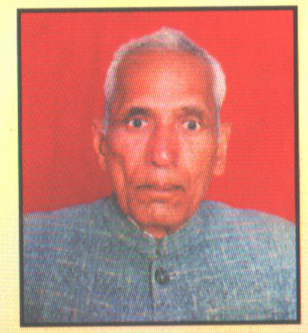

श्री दुर्गाप्रसाद गोयनका
झाझड़ (झुंझुनू)
फोन: 01594-244430,
9414313772

श्री ब्रह्मानंद गोयल
गुहाला (सीकर)
फोन-01574-281444

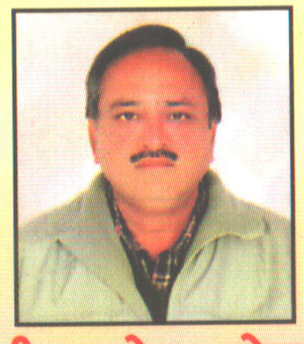

श्री बृजमोहन गोयल
265- अग्रसेन नगर, श्रीगंगानगर
मो.-94140-87694

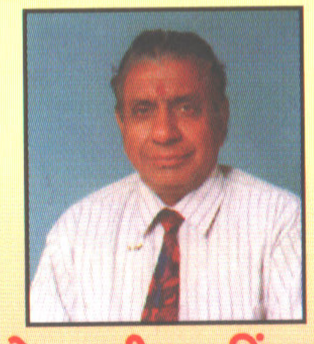

प्रो. लखीराम सिंगल
6 डी ब्लॉक, श्रीगंगानगर
फोन-9414089833

इंजि. आर.एन.गोयल
मो:9414501678
अध्यक्ष

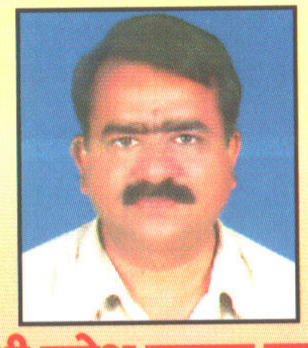

श्री सुरेश कुमार गर्ग
मो: 9414431311
महामंत्री

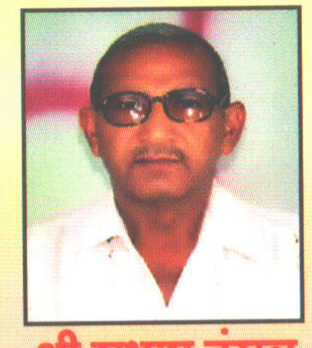

श्री सुभाष बंसल
फोन: 0154-2486920
कोषाध्यक्ष

अग्रोहा विकास ट्रस्ट, इकाई श्रीगंगानगर